शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काटु, तिरुवनंतपुरम-695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No.2456-625 X

वर्ष 8 अंक 30 **त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका** 10 अप्रैल, 2024

पीयर रिव्यू समिति :

डॉ.शांति नायर

डॉ.के श्रीलता

डॉ.बी.अशोक

मुख्य संपादक

डॉ.पी.लता

प्रबंध संपादक

डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

सह संपादक

प्रो.सती के

डॉ.एस.लीलाकुमारी अम्मा

श्रीमती वनजा पी

संपादक मंडल

डॉ.बिन्दु सी.आर

डॉ.षीना यू.एस

डॉ.सुमा आई

डॉ.एलिसबत जोर्ज

डॉ.लक्ष्मी एस.एस

डॉ.धन्या एल

डॉ.कमलानाथ एन.एम

डॉ.अश्वती जी.आर

इस अंक में

संपादकीय	:	
वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते मूल्य	: डॉ.माजिदा एम	6
संत काव्य परंपरा और दादू दयाल	: डॉ.पिंकी पारिक	10
जैविक उर्वरकों का निर्माण और अनुप्रयोग-'बृहत्संहिता' के विशेष संदर्भ में	: उज्जवल दास	13
हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय व्याप्ति	: डॉ.ऐश्वर्या झा	18
विजय बागरी जी के काव्य में समकालीन विद्रूप व्यवस्था का चित्रण	: दिलसुख राम	23
समकालीन हिंदी कविता-वैश्वीकरण के संदर्भ में	: डॉ. अञ्जलि एन	28
कैलाश सत्यार्थी की कविताओं की सामाजिकता	: डॉ.राखी बालगोपाल	32
श्रीकांत वर्मा की कविताओं में अपने परिवेश के प्रति आस्था एवं संवेदना	: विकास कुमार यादव	36
'उत्तर प्रियदर्शी' में अभिव्यक्त मूल्यबोध	: डॉ.पूर्णिमा आर	41
आधुनिक हिन्दी कहानियों में महानगरीय जीवन यथार्थ	: डॉ. सिन्धु जी नायर	44
हिन्दी के नुक्कड़ नाटकों में प्रतिरोध	: डॉ.अनीश के.एन	47

यू जी सी से अनुमोदित पत्रिका

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फॉन्ट में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 'की वर्ड' (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2500 से 3000 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक

डॉ.पी.लता

शोध सरोवर पत्रिका

मूल्य : एक प्रति रु.100/-
वार्षिक शुल्क रु.400/-

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी केलिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

फोन :0471-2332468, 9946679280,9946253648

ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com

वेबसाइट : www.shodhsarovarpathrika.co.in

संपादकीय

आट्टुकाल महोत्सव

25 फरवरी 2024 को केरल राज्य के तिरुवनंतपुरम जिले में एक विश्व विख्यात उत्सव मनाया गया। वह है ' 'आट्टुकाल पोंकल'। ' शोध सरोवर पत्रिका' के इस अंक का 'संपादकीय' प्रतिवर्ष किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना स्त्रियाँ एक साथ मनानेवाले इस उत्सव पर है। केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम में किल्ली नदी एवं करमना नदी के संगम स्थान में स्थित 'आट्टुकाल देवी मंदिर' दस्तकारी की दृष्टि से आकर्षक है और कुछ ऐतिह्यों से भी जुड़ा हुआ है। इस मंदिर का विख्यात महोत्सव है 'आट्टुकाल पोंकल', जो केरल राज्य का सर्वप्रथम पोंकल उत्सव है। इस नमूने में केरल में आजकल कई छोटे- बड़े मंदिरों में पोंकल उत्सव मनाया जाता है। प्रतिवर्ष संसार में सबसे ज़्यादा स्त्रियाँ सम्मिलित होनेवाला उत्सव होने के उपलक्ष्य में 'आट्टुकाल पोंकल' गिन्नस वेर्ल्ड रेकोर्ड में दर्ज हुआ है। जनवरी 1997 में सम्पन्न 'आट्टुकाल पोंकल' में 1.5 मिलियन स्त्रियों ने भाग लिया था। इतनी अधिक स्त्रियाँ की प्रतिभागिता की दृष्टि से इस उत्सव ने सन् 1997 में गिन्नस बुक में स्थान पा लिया। नवीकृत गिन्नस रेकोर्ड के अनुसार सन् 2009 में इस उत्सव में 25 लाख स्त्रियों ने भाग लिया।

माघ मास (मलयालम में 'कुंभम्') में आयोजित होनेवाला यह उत्सव कृत्तिका नक्षत्र के दिन देवी (आदि पराशक्ति) को 'चूड़ियाँ बाँधकर प्रतिष्ठित करने' (मलयालम में 'काप्पुकेट्टी कुटियिरुत्तल') से शुरू होता है। यहाँ प्रतिदिन 'तोट्टं पाट्टु' में 'कण्णकी' की कथा का गायन निश्चित अंश तक होता है। 'तोट्टं पाट्टु' भगवती का स्तुति गान है, जो दक्षिण केरल के भगवती मंदिरों का अनुष्ठान है। मंदिर के सामनेवाले आँगन में नारियल के पत्ते की छत्त के नीचे श्रद्धापूर्वक भगवती की प्रतिमूर्ति को बिठाकार उत्सव के पहले दिन से लेकर 'तोट्टं पाट्टु' गाया जाता है। चेर राजवंश के इलंकोवटिकल से प्रणीत संघकाल के तमिल महाकाव्य 'चिलप्पतिकारं' की वीरनायिका है कण्णकी। केरल में दुर्गा मानकर कण्णकी की आराधना की जाती है। आट्टुकाल मंदिर की उत्पत्ति की कथा कण्णकी की ही कथा है। 'आट्टुकाल उत्सव' देवी शक्ति की आराधना करने का दस दिवसीय उत्सव है। नवें दिन – पूरं नक्षत्र (पूर्वा फाल्गुनी) और पूर्णिमा के दिन- में पोंकल (देवी को स्त्रियों द्वारा नैवेद्य चढ़ाने की रस्म) आयोजित होता है। विश्वास है इस विशेष दिन में नैवेद्य चढ़ाने से आदि पराशक्ति आट्टुकाल देवी का अनुग्रह भक्तों को प्राप्त होता है। उनके अभीष्ट कार्य की सिद्धि होती है। नवें दिन की रात से दसवें दिन सुबह तक 'कुत्तियोट्टम' है। यह व्रतानुष्ठान के साथ बारह साल तक के बालकों से की जानेवाली रस्म है। पोंकल के दिन की और एक रस्म है 'तालप्पोली'। यह दस वर्ष तक की लड़कियाँ थाली में पूजा द्रव्य (फूल आदि) देवी को चढ़ाने

का अनुष्ठान है।

उत्सव शुरू होने के दिन से इस मंदिर में स्त्रियों की बड़ी भीड़ होती है। पोंकल के दिन स्त्रियों की भीड़ की दृष्टि से आट्टुकाल मंदिर 'स्त्रियों की शबरिमला' (शबरिमला श्री धर्मशासता मंदिर भक्तों की बड़ी भीडवाला मंदिर है। यह पट्टनंतिट्टा जिले में रान्नि तालुक में पंपा नदी से थोड़ी दूरी पर पहाड़ी प्रांत में स्थित है।) कही जाती है । पोंकल के दिन इस मंदिर के चारों ओर की सड़कों के दोनों पार्श्वों में (करीब 10-12 कि.मी. की दूरी पर) बैठकर स्त्रियाँ नैवेद्य तैयार करती हैं। स्त्रियाँ साधारणतया ज़रीवाली धोती और उत्तरीय पहनकर, सिर पर चमेली फूल लगाकर सज धजकर ही इस कर्म में भाग लेती हैं। जाति भेद और धर्म भेद के बिना सुदूर से भी स्त्रियाँ इसमें भाग लेने आती हैं। आट्टुकाल पोंकल के दिन भारत के अन्य राज्यों तथा विदेशों में भी स्त्रियाँ अपने- अपने घरों में या पासवाली गलियों में सम्मिलित होकर आट्टुकाल देवी को पोंकल चढ़ाती हैं। इसी प्रकार संसार में सबसे अधिक स्त्रियों की प्रतिभागिता होनेवाला उत्सव मानकर ही इसे गिन्नस बुक में दर्ज किया गया है। 'नैवेद्य' बनाने केलिए आट्टुकाल मंदिर के सामनेवाले प्रांगण में मंदिर का चूल्हा मलयालम में (पंटार अटुप्पु) पुजारी दारा पहले जलाया जाता है। फिर बाकी स्त्रियों दारा अपने-अपने चूल्हे जलाए जाते हैं। नैवेद्य के रूप में साधारणतया चावल, नारियल तथा गुड़ से खीर बनाई जाती है। कुछ भक्त (स्त्रियाँ) मंटपुट्टु (यह चावल का आटा, मटर का आटा तथा गुड़ मिलाकर बनाया जानेवाला गोलाकार का पकवान है), तेरली अप्पम (यह एक विशेष प्रकार के पत्ते में बनाया जानेवाला पकवान है।), बिना गुड़ के सादा भात आदि भी बनाती हैं। मंदिर से नियुक्त कुछ पुजारी पूर्व निश्चित समय में ही पोंकल बनाकर बैठती भक्तों के पास जाकर नैवेद्य में तीर्थ जल के छीटें छिटकाते हैं। तदुपरांत आट्टुकाल देवी का अनुग्रह प्राप्त करने की तृप्ति के साथ स्त्रियाँ अपने-अपने घरों में लौट जाती हैं।

कण्णकी की कथा इस प्रकार है- कण्णकी चोल साम्राज्य की राजधानी पुंपुकार नगर के धनी व्यापारी मामाक्कन की बेटी थी। उसी नगर के कोवलन के साथ उसकी शादी सम्पन्न हुई। फिर कोवलन ने देवदासी माधवी पर रीझकर सारी दौलत गंवा दी। फिर माधवी के चरित्र पर शंकालु होकर कोवलन अपनी पत्नी कण्णकी के पास लौट आया। उसने अपनी गलती की क्षमा-याचना की तो क्षमा-शक्तिवाली कण्णकी ने माफ़ी दी। आजीविका केलिए नया व्यापार शुरू करने को अपनी कीमती पायलों में एक को बेचने केलिए वह मधुरा नगरी में अपने पति के साथ गयी। बाज़ार में जाकर कोवलन ने पाण्ड्य राजा के सुनार को अपने पास विक्रय को रखी पायल दिखा दी। पाण्ड्य राणी की एक स्वर्ण पायल की चोरी उस सुनार ने पहले ही की थी। उस पायल से रूप सादृश्यवाली पायल कोवलन के पास देखकर सुनार ने आत्मरक्षा केलिए कोवलन को राणी की पायल का चोर स्थापित किया। पाण्ड्य राजा ने क्रोध के मारे कोवलन का वध कराया। तब कण्णकी ने रौद्र भाव में आकर राजा से पूछा कि राणी की पायल के अंदर क्या रखा हुआ है? उसमें साधारण मोती मात्र है, यह जानकर कण्णकी ने अपनी पायाल तोड़ ली तो उससे अमूल्य मानिक (पद्मराग) ही छितरे। अतिकोप से कण्णकी अपना बायाँ स्तन काट लेकर तीन बार मधुरा नगरी की परिक्रमा की

और हाथ का स्तन गली में फेंक दिया। उस नागरी की पतिव्रता स्त्रियों, बूढ़ों, बच्चों, ब्राह्मणों, भिक्षुकों, मुनियों तथा मवेशियों को छोड़कर शेष सबको भस्मसात करने को अग्निदेव से भी कहा ।

दुखित कण्णकी जलपान छोड़कर चौदह अहोरात्र चलकर चेरनाटु की मंगलादेवी पहाड़ी पर आई। विश्वास है कि वहाँ थकी-माँदी बैठी कण्णकी को देवी-दर्शन प्राप्त हुआ। इस स्थान के आदिवासी लोग कण्णकी को परदेवता मानकर आज भी आराधना करते हैं। एक तपस्वी के निर्देशानुसार कण्णकी केरल में आई, ऐसा भी विश्वास है।

'कण्णकी' देवी पार्वती का अवतार मानी जाती है। केरल में कण्णकी जहाँ बसी थीं, उस पुण्यभूमि 'आट्टुकाल' में एक मंदिर का निर्माण मुल्लुवीटु के कारणवर (मुखिया) ने अपने स्वप्न- दर्शन के अनुसार किया। इसका ऐतिह्य इस प्रकार है – संध्या वंदना के पहले किल्लियार (नदी) में स्नान करने को गए कारणवर ने नदी के उस पार बैठती रेशमी लहंगा पहनी लड़की को देखा। लड़की के कहने पर कारणवर तैरकर उस पार गए, उसे नदी के इस पार पहुँचा दिया और उसे अपने घर ले आये। वे प्रार्थना के बाद लड़की को भोजन लेके आये तो लड़की गायब हुई थी। उस दिन रात को कारणवर के सपने में देवी प्रकट हुईं। उनसे कहा गया कि पासवाली झाड़ी ('कावु') में तीन लकीरों के जो चिह्न देखें, वहाँ देवी का प्रतिष्ठान करना है। उन्होंने ऐसा ही किया। उनसे निर्मित उस छोटे देवी मंदिर के स्थान पर ही बाद में सुंदर विशाल आट्टुकाल मंदिर निर्मित हुआ।

देवी को पोंकल निवेद चढ़ाने से संबन्धित एक ऐतिह्य भी प्रचलित है- एक दिन सूर्योदय के समय कुछ स्त्रियाँ काम करने जा रही थीं कि किल्लियार (नदी) के तट में अपने पैर पानी में डुबोकर 'ठंडा करके' (मलयालम में 'आट्टीक्कोंटु') बैठती थकी – माँदी एक स्त्री को देखा। उन्हें ऐसा लगा कि उस स्त्री ने कुछ दिनों से कुछ नहीं खाया है। उन स्त्रियों ने पत्थरों को लेकर चूल्हा बनाया, एक मिट्टी के बर्तन में पानी उबाला और उसमें काम के दौरान पकाकर खाने को अपने हाथ में रखे हुए चावल डालकर उस स्त्री केलिए भात तैयार किया। तब उदय सूर्य की सुनहली किरणों पड़कर मिट्टी का वह बर्तन स्वर्णाभ हो गया। उस स्वर्ण बर्तन (मलयालम में 'पोनकलम्') में पका भोजन देवी को सबसे प्रिय 'पोंकल' (मलयालम में 'पोंकाला') भी बना। वह श्रांत स्त्री साक्षात् कण्णकी देवी थी। कण्णकी गरमी में अपने 'काल आट्टिया' (पैर ठंडा किया) वह स्थान कालांतर में 'आट्टुकाल' नाम से विख्यात हुआ। वर्षों पहले देवी माँ के ताप और भूख मिटाये उस स्थान में सुदूर से भी भक्त स्त्रियाँ आकार आजकल पोंकल चढ़ाती हैं।

माघ मास के पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र के दिन लाखों स्त्रियाँ व्रतानुष्ठान के साथ यहाँ आती हैं। ये आट्टुकाल मंदिर के आँगन से लेकर 10-12 कि.मी. की दूरी तक कतार में भक्तियोग से बैठकर भगवती को नैवेद्य चढ़ाती हैं। ये इस मनहर आचार में मनोयोग से अपनी मन्नत उतारकर, अपने पूरे मनस्तापों को भगवती के चरणों पर छोड़कर मन: प्रीति के साथ अपने-अपने घरों में अपने प्रिय जनों के पास लौट जाती हैं।

डॉ.पी.लता
संपादक, शोध सरोवर पत्रिका
(मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी)।

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में बदलते मूल्य ('दौड़' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)

◆डॉ. माजिदा एम

सार- वैश्वीकरण विश्व को एक बाज़ार के रूप में परिवर्तित कर देता है और व्यापार के मार्ग में आनेवाले सारे अवरोधों को दूर करता है। पूँजीपति राष्ट्रों के व्यापारिक हितों की रक्षा का माध्यम है वैश्वीकरण। भारत में वैश्वीकरण का सबसे अधिक प्रभाव आर्थिक क्षेत्र में पड़ा। आर्थिक उदारीकरण के कारण अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत की ओर आकृष्ट हुईं। इससे सामाजिक,राजनैतिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक क्षेत्रों में वैश्वीकरण का व्यापक प्रभाव पड़ा। वैश्वीकरण से प्रभावित भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करनेवाला सशक्त उपन्यास है ममता कालिया का 'दौड़'। इसका नायक पवन वैश्वीकरण से उत्पन्न सामाजिक परिस्थितियों के चंगुल में फँसी युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि है। वह अपनी कामयाबी की दौड़ में माता- पिता की भावनाओं को कोई महत्व नहीं देता। नौकरी के चक्कर में पारिवारिक संबंधों को ताव पर लगाने में उसे कोई हिचकिचाहट नहीं।वैश्वीकरण के प्रभाव से निरंतर बदलते मानवीय मूल्य, अकेलापन, विज्ञापन का मायावी संसार आदि का जीवंत चित्र इस उपन्यास में मिलता है। पुरानी पीढ़ी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को सब कुछ मानती है तो नई पीढ़ी अपनी महत्वाकांक्षा के सामने मूल्य या संस्कार को कोई अहमियत नहीं देती। मानवीय संबंध और संवेदना में आए इस बदलाव का मर्मस्पर्शी चित्रण करनेवाला उपन्यास है 'दौड़'।

बीज शब्द –वैश्वीकरण, आर्थिक क्षेत्र, सांस्कृतिक मूल्य, उपभोक्तावादी संस्कृति, बदलते मानवीय मूल्य, अकेलापन, विज्ञापन का मायावी संसार, मानव संबंध में आए बदलाव।

वैश्वीकरण विश्व को एक बाज़ार के रूप में परिवर्तित कर देता है, जिसमें वस्तु, पूँजी, टेक्नोलजी और सेवा का पूरे विश्व में स्वतंत्र आवागमन सुनिश्चित कर देता है। इससे पूरे विश्व के बाज़रों के बीच एक दूसरे पर निर्भरता पैदा होती है और देश की सीमाएँ व्यापार के मार्ग में किसी प्रकार के अवरोध पैदा नहीं करतीं। वैश्वीकरण शब्द से भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि यह संपूर्ण विश्व के लोगों के मंगल के लिए एक साथ जुड़ जाता है। लेकिन वास्तव में यह 'वसुधैव कुटुम्बकम' से भिन्न विश्व के कुछ सशक्त व पूँजीपति राष्ट्रों के हित की रक्षा का माध्यम है। औद्योगिक क्रांति के कारण उत्पादन की मात्रा तेज़ी से बढ़ गयी तो वे अपने लिए नए बाज़ार ढूँढना चाहते थे। 'वैश्विक गाँव' जैसे मधुर शब्दों से उन्होंने विकासशील देशों को अपने जाल में फँसाने का प्रयास किया। इसके द्वारा उनका उद्देश्य अपने व्यापारिक हितों की रक्षा करना था। वैश्वीकरण के द्वारा वे उन सारे क्षेत्रों को अपने लिए खोल देना चाहते थे जो अब तक उनकी पहुँच के बाहर थे।

आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक क्षेत्रों में भी वैश्वीकरण का व्यापक प्रभाव पड़ा। इससे भारतीय समाज और संस्कृति के विविध पहलू प्रभावित हुए जिसका प्रमाण हम भारतीय महानगरों, शहरों एवं गाँवों में देख सकते हैं। वैश्वीकरण भारत की पुरानी सांस्कृतिक विरासत को नष्ट कर एक वैश्विक संस्कृति को थोप रहा है, जो पश्चिमीकरण से प्रभावित है।पश्चिम के अंधानुकरण से संयुक्त परिवार टूटकर एकल परिवार के रूप में बदल गया, पति-पत्नी के बीच के तनाव के कारण तलाक जैसे कदम उठाए जाने लगे, वैश्वीकरण के कारण देश की सीमा मिट गई तो विस्थापन की समस्या

का सामना करना पड़ा तथा लोग ज़्यादा से ज़्यादा रिश्ते बनाने लगे। लेकिन संबंधों में पहले जो ऊष्मा थी वह नष्ट हो गयी। सांस्कृतिक मूल्य ने अपना महत्व खो दिया। गाँव से शहरों की ओर लोगों का पलायन, निम्न जीवन स्तर, पारिवारिक विघटन, व्यक्तिवादी मनोवृति की ओर झुकाव, सहनशीलता की कमी, वृद्ध लोगों को बोझ समझने की प्रवृत्ति,मासूम लोगों की हत्या, नारी को केवल देह समझने की प्रवृत्ति, उपभोक्तावादी संस्कृति आदि वैश्वीकरण के परिणाम हैं।

हिंदी उपन्यास में वैश्वीकरण-

वैश्वीकरण का प्रभाव हिंदी उपन्यास साहित्य पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। हिंदी उपन्यासकारों ने वैश्वीकरण को अपने अलग-अलग दृष्टिकोण से देखने एवं परखने का प्रयास किया है। लगातार बढ़ती भौतिक चकाचौंध, मानवीय रिश्तों तथा संबंधों में आए बदलाव,खुले बाज़ार की अवधारणा, सार्वजनिक संस्थानों का निजी संस्थानों में रूपांतरण, मल्टी नेशनल कंपनियों का बढ़ता प्रभुत्व, विज्ञान और प्रौद्योगिकी की विस्फोटक प्रगति, कंप्यूटर और मोबाइल का तीव्र विकास, विज्ञापनों का मायावी संसार आदि का चित्रण इस उपन्यास में मिलता है।

वैश्वीकरण से प्रभावित भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण करनेवाला सशक्त उपन्यास है ममता कालिया का 'दौड़'। भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का पदार्पण, इन कंपनियों से प्रभावित युवा पीढ़ी, भारतीय समाज और संस्कृति में आए बदलाव, इससे प्रभावित मानवीय संबंध एवं संवेदना आदि का जीवंत चित्र इस उपन्यास में मिलता है।

उपन्यास का नायक पवन पांडे इलाहाबाद के एक मध्यवर्गीय परिवार का युवक है, जो आज की युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। उसके माँ-बाप राकेश और रेखा परंपरागत जीवन-मूल्यों को विशिष्ट स्थान देनेवाले थे। वे दोनों उसे उच्च शिक्षा देकर संस्कार संपन्न मानव बनाना चाहते थे। माता-पिता की यही आशा थी कि वह बुढ़ापे में उनका सहारा बन जाएगा। अपने एम.बी.ए के अंतिम वर्ष में ही एक बहुराष्ट्रीय कंपनी में उसका अनुबंध हो जाता है और वह घर से अठारह सौ किलोमीटर दूर अहमदाबाद में नौकरी के लिए चले जाने का निर्णय लेता है।

ऊँचे से ऊँचे ओहदा पाना उसके जीवन का लक्ष्य था और बीच में आनेवाले हर अवरोध को वह आसानी से पार करता है। इस दौड़ में वह अपने माता-पिता की भावनाओं को देख या समझ नहीं पाता और अपने परिवार या समाज के लिए कोई हितकर कार्य नहीं कर सकता। वैश्वीकरण से उत्पन्न सामाजिक परिस्थितियों के चंगुल में फँसी युवा पीढ़ी का यथार्थ चित्रण पवन के पिता राकेश के शब्दों में स्पष्ट नज़र आता है- "पवन के बहाने एक पूरी की पूरी युवा पीढ़ी को पहचानो। ये अपनी जड़ों से कटकर जीनेवाले लड़के समाज की कैसी तस्वीर तैयार करेंगे।"[1]

सांस्कृतिक द्वंद्व -

भारतीय समाज में विवाह को पवित्र माना जाता है और इसमें माता-पिता की सहमति एवं आशीर्वाद अत्यंत आवश्यक है। पवन के माता-पिता यही चाहते थे कि उनका बेटा समाज और संस्कृति की रीत-नीति और रस्म के अनुसार विवाह करें। लेकिन पवन यह नहीं मानता था और उसके अनुसार विवाह मात्र एक 'डील' है। माता-पिता से विचार-विमर्श किए बिना वह स्वयं अपनी शादी के लिए लड़की पसंद करता है। विवाह जैसे पवित्र कर्म को निरर्थक मानते हुए पवन और स्टैला एक साथ जीने लगते हैं। विवाह के स्थान और समय तय करने में भी उसने माता-पिता की इच्छा नहीं मानी। वह अपनी शादी अपने तरीके से करने का 'फ्रीडम' चाहता है।वैश्वीकरण के कारण उत्पन्न नई संस्कृति और परंपरागत संस्कृति के बीच का द्वंद्व रेखा के इन शब्दों में व्यक्त है "मैं ने तो कोई लड़की नहीं देखी

जो शादी से पहले ही पति के घर में रहने लगे।"[2]

जिस प्रकार पवन ने अपनी कामयाबी की दौड़ में माता-पिता की भावनाओं को समझे बिना अपने करियर बनाने के लिए दूसरे शहर में जा बसा उसी प्रकार विवाह के तुरंत बाद चेन्नई की एक बहुराष्ट्रीय कंपनी में उच्च पद प्राप्त होने पर अपनी पत्नी को अकेला छोड़कर वह चेन्नई चला जाता है। जीवन में आगे बढ़ने की यह होड़ उसके पारिवारिक जीवन की तालात्मकता को नष्ट कर देती है। इनका दांपत्य जीवन साथ रहने के स्थान पर 'सेटेलाइट' और 'कंप्यूटर' से संचालित होता है। नौकरी की व्यस्तता के कारण लंबे समय तक पवन पत्नी स्टैला से मिल नहीं पाता। अपनी माँ के सामने वह इस बात को स्वीकार करते हुए कहता है "मैं स्टेला की शक्ल भी भूलता जा रहा था। इसलिए ढाका से सीधे उससे मिलने के लिए चला गया था।"[3] इस प्रकार वैश्वीकरण से वशीभूत होकर नौकरी के चक्कर में पारिवारिक संबंधों को ताव पर लगानेवाली आधुनिक युवा पीढ़ी का चित्रण इस उपन्यास में मिलता है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ-

वैश्वीकरकण के कारण भारत में अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आगमन हुआ। ये कंपनियाँ अपने मुनाफे के उद्देश्य से यहाँ पाँव जमायी गयी थीं और मुनाफा प्राप्त करने के लिए कर्मचारियों पर कड़े से कड़े नियंत्रण लागू करते थे। इनके संबंध में यह कथन ठीक है कि "सिद्धि, इस दुनिया में, एक चार पहिया दौड़ है जिसमें स्टियररिंग आपके हाथ में है पर बाकी सारे कंट्रोल कंपनी के हाथ में। वही तय करती है आपको किस रफ्तार से दौड़ना है और कब तक।"[4]

कठिन मेहनत करने पर भी कंपनी और कर्मचारियों के बीच के संबंध का कोई मूल्य नहीं। ये कंपनियाँ किसी भी वक्त अपने कर्मचारियों की छँटनी करती हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन से पहले भारत में स्थापित विभिन्न छोटी-मोटी कंपनियों के मालिक अपने कर्मचारियों से आत्मीयता से पेश आते थे। कर्मचारी भी अपनी कंपनी से प्रतिबद्ध थे। लेकिन वैश्वीकृत समाज के कर्मचारी को अपनी कंपनी से किसी भी प्रकार की प्रतिबद्धता नहीं है और वे दूसरी कंपनी में उच्च पद और उच्च वेतन मिलने पर खुशी-खुशी उसे स्वीकार करते हैं। आधुनिक भारतीय युवा पीढ़ी की मानसिक स्थिति का यह बदलाव परंपरागत मूल्यों में आए परिवर्तन और विघटन का द्योतक है।

बदलते मानवीय मूल्य-

वैश्वीकरण के प्रभाव से निरंतर बदलते मानवीय मूल्यों का चित्रण 'दौड़' उपन्यास में मिलता है। अच्छी परवरिश मिलने के बावजूद पवन भौतिक चकाचौंध के पीछे भागते हुए अपने नैतिक मूल्यों को खो देता है। वह अपने जीवन में परंपरागत मूल्य एवं नैतिकता को कोई स्थान नहीं देता। पवन कहता है-"मैंने अब तक पाँच सौ किताबें तो मैनेजमेंट और मार्केटिंग पर पढ़ी होंगी। उनमें नैतिकता पर कोई चैप्टर नहीं है।"[5] राकेश उसे अपने परंपरागत मूल्यों की अहमियत समझाने की कोशिश करता है तो वह चिढ़ जाता है- "मेरे हर काम में आप यह क्या एथिक्स, मोरालिटी जैसे भारी-भरकम पत्थर मारते रहते हैं। मैं जिस दुनिया में हूँ वहाँ एथिक्स नहीं प्रोफेशनल एथिक्स की ज़रूरत है।"[6] इससे स्पष्ट है कि आज की युवा पीढ़ी को अगर हम परंपरागत मूल्यों की सीख देना चाहें तो भी उसी को वह समझ नहीं पाएगा, क्योंकि उसकी आँखें मात्र तरक्की की ओर हैं।

अकेलापन-

वैश्वीकरण से उत्पन्न और एक समस्या है अकेलापन। प्रस्तुत उपन्यास में अकेलापन और असुरक्षा का चित्रण मार्मिक ढंग से हुआ है। राकेश और रेखा जिस कॉलोनी में रहती हैं वहाँ के अधिकांश माँ-बाप अकेलापन का सामना कर रहे हैं, क्योंकि उनकी संतानें पढ़-लिखकर कहीं दूर नौकरी कर रहे हैं। इससे यह सारी कॉलोनी सीनियर सिटीज़न कॉलोनी बन गई है। रेखा के शब्दों में "हर

घर में, समझो एक बूढ़ा, एक बूढ़ी, एक कुत्ता और एक कार बस यह रह गया है।[7] बच्चों के सुरक्षित भविष्य के लिए माँ-बाप असुरक्षा, भय,आशंका और एकरसता का सामना कर रहे थे। लेकिन ज़रूरत पड़ने पर वे एक दूसरे की सहायता करने के लिए तैयार थे। कॉलोनी के बुजुर्ग मिस्टर सोनी का देहांत हो गया तो उनका अंतिम संस्कार करने के लिए अमेरिका में रहनेवाले बेटे सिद्धार्थ को खबर दी गई। सिद्धार्थ का उत्तर यही था- "आप ऐसा कीजिए, इस काम के लिए किसी को बेटा बनाकर दाह- संस्कार करवाइए।"[8] सोनी जी के अपने ही खून में जन्मा बेटा इस प्रकार पत्थर दिल बन गया तो पाणिनि का बच्चा भूषण सिद्धार्थ के सारे दायित्वों को भली भाँति निभाता है। खुशी की बात है कि वैश्वीकरण के युग में भी हमारे समाज में ऐसे बच्चे विद्यमान हैं जो अपने परंपरागत मूल्यों को सीने से लगाए हुए हैं।

विज्ञापनों के मायावी संसार-

'दौड़' उपन्यास विज्ञापनों के मायावी संसार से हमें परिचित कराता है। विज्ञापनों से मानव इतना अधिक प्रभावित है कि उसका संपूर्ण जीवन बाज़ार द्वारा नियंत्रित है। आज की उपभोक्तावादी संस्कृति में विज्ञापन के माध्यम से आम जनता से पैसा निकलवाने की पूरी योजना बनायी जा रही है। बाज़ार जनता को जनता के रूप में न देखकर मात्र उपभोक्ता के रूप में देखताहै। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपना उत्पाद बेचने के लिए आकर्षक एवं लालायित करनेवाले विज्ञापन प्रस्तुत करती हैं। पवन के मित्र अभिषेक शुक्ला के माध्यम से लेखिका ने विज्ञापन की दुनिया की पोल खोलने का प्रयास किया है। अभिषेक एक विज्ञापन कंपनी में काम करता है। उसे मालूम है कि मार्केटिंग के लिए विज्ञापन झूठ पर झूठ बोलता है। वह स्वयं स्वीकार करता है कि सोना डिटरजेंट की एड फिल्म के शूट के समय बाल्टी में झाग उठवाने के लिए उसने क्लीन डिटरजेंट पाउडर का इस्तेमाल किया था क्योंकि क्लीन में सोना से ज़्यादा झाग पैदा करने की ताकत है। लेकिन वह इसे लोगों को धोखा देना नहीं मानता। उसके अनुसार यह तो सीधा-सादा एक प्रोडक्ट बेचना है। इसके बीच में वह नैतिकता, सच्चाई आदि को स्थान नहीं देता। उसके शब्दों में "यह सच्चाई, नैतिकता सब मैं दर्जा चार तक मॉरल साइंस में पढ़कर भूल चुका हूँ।"[9] पवन भी इसी बात को स्वीकार करता है -"दरअसल बाज़ार के अर्थशास्त्र में नैतिकता जैसा शब्द सिर्फ कन्फ्यूशन फैला रहा है।"[10]

निष्कर्ष

वैश्वीकरण के भयानक दौर से गुज़रते भारतीय समाज और उसके बदलते मूल्यों का चित्रण इस उपन्यास में मिलता है। 'दौड़' दो पीढ़ियों के बीच के संघर्ष का उपन्यास है, जिसमें नई पीढ़ी का युवा वर्ग ऊँचे वेतन पाने की लालसा में यांत्रिक बन गया है तो पुरानी पीढ़ी अपने परंपरागत संस्कारों को बनाए रखने के लिए निरंतर संघर्षरत है। वे प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को सब कुछ मानतेहैं। लेकिन नई पीढ़ी अपनी महत्वाकांक्षा के सामने मूल्य या संस्कार को कोई स्थान नहीं देती। "भूमंडलीकरण ने जिस रूप में हमारे सांस्कृतिक परिदृश्य को बदला है, उससे हमारे जीवन- मूल्यों में भारी बदलाव आया है। जिन बहुत से जीवन-मूल्यों को हम सदियों से उदात्त और श्रेष्ठ की कोटि में रखते चले जा रहे थे, वे पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में वैश्वीकरण की आँधी में समय बाह्य (आउट डेटेड) हो चले।"[11] मानव संबंध और संवेदना में आए इस बदलाव को रेखांकित करनेवाला यह उपन्यास युगीन वास्तविकताओं की गाथा है।

संदर्भ:

1.ममता कालिया– दौड़, पृ.42, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली; 2010, पृ.; 42

2. वही, पृ.52

3. वही, पृ.83

4. वही, पृ.20

5. वही, पृ.39
6. वही, पृ.66
7. वही, पृ.40
8. वही, पृ.81
9. वही, पृ.37
10. वही, पृ.39
11.पुष्पपाल सिंह - भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास पृ.265; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 2015

◆सहायक आचार्य,
सरकारी महिला महाविद्यालय,
तिरुवनंतपुरम-14
केरल राज्य।

संत काव्य परम्परा और दादू दयाल

डॉ.पिंकी पारीक

सारांश- भारतीय भक्ति साहित्य में निर्गुण संत परंपरा की महत्वपूर्ण देन है । संत काव्य की परंपरा में कबीर के साथ दादू दयाल का नाम भी बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है।दादू अपने पंथ तथा योग्य शिष्यों के कारण संतों के बीच अत्यधिक प्रतिष्ठित है। दादू ने स्वयं प्रचुर साहित्य की रचना की। दादू अंतर्मुखी साधक हैं। दादू ने हमेशा ही इस बात पर ज़ोर दिया कि संत को शीलवान और विनम्र होना चाहिए। उनकी भाषा उनके व्यक्तित्व के समान ही विनम्र थी। मूर्ति पूजा, छापा तिलक, जप, बलि, नमाज़ आदि का विरोध करते हुए भी उनकी भाषा हमेशा ही शिष्ट रही । उनकी भाषा उनके व्यक्तित्व के समान ही विनम्र थी। दादू ने हमेशा ही सत्संगति के महत्व को बताया एवं कुसंगति का परित्याग किया। काम-क्रोध का विरोध किया। उनका मानना था कि वाणी ऐसी होनी चाहिए जो कि हमेशा ही ब्रह्म का बखान करे। अपने अहं का परित्याग कर मन को विषय वासनाओं से दूर रखने की बात कही । उनका मानना था कि काम-क्रोध से ही मनुष्य विनष्ट होता है। संत काव्यधारा में दादू अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं, जो कि उन्हें अपनी प्रतिभा व संयत वाणी के माध्यम से प्राप्त हुआ है ।

बीज-शब्द – अंतर्मुखी, शीलवान, योगाचार्य, तंत्र, हठयोग, वाममार्ग, आध्यात्मिक प्रेम,आस्वादन, परंपरा, सुदीर्घ, लोकोन्मुख, अद्यतन ।

भक्ति आंदोलन लोक जागरण का आंदोलन है, जिसमें समाज की प्रतिगामी शक्तियों के विरुद्ध संतों और भक्तों ने तीव्र आक्रोश और विरोध का भाव व्यक्त किया और मनुष्य के आचरण की पवित्रता और शुचिता के श्रेष्ठ मानदण्ड प्रदान किए। सामंती युग में समाज विविध जातियों, वर्णो और संप्रदायों में विभक्त था, जाति के बंधन कठोर और जटिल थे, जिनके मध्य एक संप्रदाय पशुतुल्य जीवन यापन करने को विवश था।दूसरी ओर इस्लामी आक्रांता संपूर्ण समाज की आस्था व विश्वास के केंद्र रहे देव मंदिरों का विध्वंस करने पर तुले थे। राजन्य वर्ग लाचार था और पराजय स्वीकार कर चुका था। इस निराशा से परिपूर्ण परिवेश में संतों और भक्तों ने अपनी वाणी से निराश जनता को आशा का संबल प्रदान किया। भक्ति आंदोलन ने तत्कालीन परिवेश में एक विशाल सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में कार्य किया। इसे गति प्रदान करने में सभी जातियों, वर्णो और

संप्रदायों ने सहयोग दिया। इसमें एक ओर निर्गुण धारा के संत – कबीर, दादू, धन्ना, पीपा, रैदास, रज्जब, नानक और सुंदरदास-हैं, तो दूसरी ओर सूर, तुलसी जैसे महान कवि भी हैं। डॉ. गोविंद त्रिगुणायत कहते हैं कि "हिंदी की निर्गुण काव्यधारा मध्यकालीन भारतीय संस्कृति का वह दिव्य हार है, जिसमें युग - युग के बिखरे हए जीवन तत्व रूपी मोती संजो-संजोकर पिरोए गए हैं । उसे पाकर वह कृतार्थ हो गई थी। उसमें नई चेतना आ गई थी। उसका म्लान कलेवर दिव्य सौंदर्य से प्रोद्भासित हो उठा था। उसकी छवि किरणें आज भी संस्कृति को जीवन का संदेश दे रही हैं। स्वार्थ और संघर्ष के कर्दम में फंसे हुए विश्व के लिए यही एकमात्र त्राण है।"[1]

सामाजिक और राजनीतिक जीवन ज्यों-ज्यों लोकोन्मुख हुआ त्यों-त्यों निर्गुण संत साहित्य की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ। निर्गुण संतों ने वेद ,पोथी, पुराण, संस्कृत भाषा, मंदिर, मूर्ति आदि को किनारे करके निजी अनुभव और अपनी साधना को अधिक महत्व दिया। सादगी, सदाचार, निर्भीकता, त्याग, पसीने की कमाई तथा गृहस्थ जीवन में रहकर भी परिव्राजकता इनकी उपलब्धियाँ हैं, साथ ही समाज के सामान्य जन के लिए संदेश भी है।

संत साहित्य की धारा, जो कि विक्रम की सातवीं शताब्दी से प्रवाहित होती है वह अपने मार्ग में आनेवाले अनेक प्रभावों से प्रवाहित होती हुई तथा कुछ को अपने में समेटती हुई 15वीं शताब्दी में विराट रूप धारण कर लेती है। योगाचार्य, तंत्र, हठयोग, वाममार्ग आदि संबंधी अनेक सिद्धांतों का प्रभाव इन पर दिखाई पड़ता है। इन संतों के यहाँ निर्भय तन्मयता, स्पष्टवादिता, वैचारिक दृढ़ता तथा वैयक्तिक पवित्रता का जो स्वरूप दिखाई पड़ता है, उसे इन संतों ने अपने श्रम से अर्जित किया, इस निर्भयता ने ही कभी पंडित, काजी या मुल्ला को फटकारा, कभी उनके ज्ञान के सामने चुनौती भी उन्होंने दी है।

इसी संत काव्य की परंपरा में कबीर के साथ दादू दयाल का नाम भी बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है । दादू अपने पंथ तथा योग्य शिष्यों के कारण संतों के बीच अत्यधिक प्रतिष्ठित हैं।दादू ने स्वयं प्रचुर साहित्य की रचना की। दादू अंतर्मुखी साधक हैं । अपने मन से ही अधिकतम संवाद करते हैं ।डॉ. बृजलाल वर्मा ने कबीर और दादू दोनों की कथन शैली पर विचार करते हुए लिखा है "महात्मा दादू दयाल कबीर के सिद्धांतों और विचारों से प्रभावित होते हुए भी उनके अक्खड़पन, कटु-तीव्र प्रहार, स्वभाव और उपदेश पद्धति की निरंकुशता का कोई भी प्रभाव दादू के दार्शनिक चिंतन में परिलक्षित नहीं होता। मृदुलता, शील और विनम्रता से उनकी वाणी ओतप्रोत है। कबीर के ये शब्द देखिये - 'आपा मेटी जीवत मरे तो पावे करतार' अथवा 'शील संतोष के सबद जा मुख बसे, संत जन जौहरी सांची मानी'। दादू की वाणी और आचार दोनों में चरितार्थ होते हुए दिखाई पड़ते हैं। महात्मा दादू ने यदि बाह्याडम्बरों का खंडन किया भी तो प्रेमासिक्त वचनावली से, जबकि कबीर ने अपने निषेधों और खंडनों में आक्रोश,आवेग, कटुता आदि का सर्वथा निराकरण नहीं कर सके" ।[2]

दादू दयाल मन की पवित्रता को अधिक महत्व देते हुए कहते हैं-

"अल्लाह कहौ भावे राम कहौ । डाल तजौ सब मूल गहौ ।।

अलह राम कहि कर्म दहौ ।झूठे मारगि कहा बहौ ।।

साधु संगति तो निबहौ । आइ परे सोसिसिसहो।।

काया कँवल दिल लाई रहौ । अलख अलह दीदार रहो।।"[3]

दादू ने हमेशा ही इस बात पर ज़ोर दिया

कि संत को शीलवान और विनम्र होना चाहिए। उनकी भाषा उनके व्यक्तित्व के समान ही विनम्र थे। मूर्ति पूजा, छापा तिलक, जप, बलि, नमाज़ आदि का विरोध करते हुए भी इनकी भाषा हमेशा ही शिष्ट रही। दादू ने हमेशा ही सत्संगति के महत्व को बताया एवं कुसंगति का परित्याग किया। काम-क्रोध का विरोध किया, उनका मानना था कि वाणी ऐसी होनी चाहिए जो कि हमेशा ही ब्रह्म का बखान करें। अपने अहं का परित्याग कर मन को विषय-वासनाओं से दूर रखने की बात कही। उनका मानना था कि काम-क्रोध से ही मनुष्य विनष्ट होता है। अपने आप पर गुमान नहीं करना चाहिए। "दादू ने इस संप्रदाय का सूत्रपात अपने साथियों की गोष्ठी के अंतर्गत आध्यात्मिक तत्वों की चर्चा द्वारा किया था। उनका मुख्य उद्देश्य यही था कि किस प्रकार प्रचलित परस्पर विरोधी धर्मों व संप्रदायों के बीच संबंध में लानेवाली बातों का निरूपण किया जाए। इसके सिवाय उनकी यह भी इच्छा थी कि ऐसे यत्नों का सर्वसाधारण के लिए सुलभ तथा उपयोगी सिद्ध होनेवाले किसी जीवन पद्धति का निर्माण किया जाए और उनका सब कहीं प्रचार करके सब किसी को लाभान्वित करने की चेष्टा की जाए। उक्त गोष्ठी व समाज के संगठन के पूर्व उन्होंने बहुत दिनों तक एक पहाड़ी के निकट गुफा में रहकर आत्मचिंतन किया था। उन्होंने इस अवसर पर उस अनुभव को काम में लिया"[4]।

ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए संत दादू दयाल ने आध्यात्मिक प्रेम और साधु संगति को महत्व दिया है। उस ब्रह्म का प्रेमरस अत्यधिक मीठा होता है। उसीका आस्वादन करना चाहिए जो सदैव उस प्रेम रस को पीता है। वह अविनाशी हो जाता है। यही रस मुनि, साधु, संत, ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी पीते हैं। इसीका आस्वादन नामदेव,पीपा, रैदास और कबीरदास ने भी किया है, इसी प्रेम रस में जीव अनुरक्त होता है। हरि रस का आस्वादन करते-करते कभी अरुचि नहीं होती और इसे पीकर नित नूतन अनुभव जो करे वही वास्तव में इस रस का उपभोग करनेवाला है।

"दादूराम नाम सबको कहे, कहिबे बहुत विवेक
एक अनेकों फिरि मिले, एक समान एक।"[5]

दादू दयाल ने भी नाम स्मरण को महत्व दिया है। राम नाम स्मरण से सभी शारीरिक मैल छूट जाते हैं। राम नाम ही समस्त संपत्ति का सार तथ्य है,राम नाम से ही संसार सागर को पार किया जा सकता है।

"राम नाम जिनि छाड़ कोई,राम कहत जन निर्मल होई।
राम नामसुख सम्पति सार,राम नामि तीरी लयों पार ।।"[6]

दादू दयाल ने जीवन मुक्ति को ही वास्तविक मुक्ति का आधार माना है। उनका मत है कि मनुष्य को ज्ञान के द्वारा या ईश्वर की उपासना के द्वारा इंद्रियों का विरोध करता हुआ निरंतर भगवान सेवा में लीन होकर ही शाश्वत आनंद की अनुभूति होती है। जीते जी इस अवस्था को प्राप्त करना उनके अनुसार वास्तविक मुक्ति है। वे कहते हैं-

"दादू जीवन छूटें देह गुण, जीवत मुक्ता होई।
जीवत काटे कर्म सब, मुक्ति कहावे सोई।
दादू दयाल ही दूतर तिरे, जीवत लघें पार।
जीवत जगपति न मिले,दादू बुडे सोई।"[7]

दादू दयाल ने मन को ही वश में करने का उपदेश दिया और मन की पवित्रता से शरीर की पवित्रता बताई। उनकी वाणी में इस विषय पर बहुत अधिक ज़ोर दिया गया है। उन्होंने तन के

विकारों के परित्याग के लिए मन की निर्मलता का उपदेश दिया।

"मन निर्मल तन निर्मल भाई,आन उपाय विकार न जाई।
जे मन कोयला तो तनकारा कोटि करें नहीं जाई विकारा।
जो मन विषहर तो तन भगवा, करे उपाईविष पुणे संगा।
मन मैला तन उज्जल नाही,बहु पचि हारीविकार न जाई।"[8]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि दादू एकनिष्ठ भाव से प्रभु की आराधना करनेवाले सारे तर्क- वितर्क, वाद-विवाद से मुक्त संत थे। वे किसी भी तरह के वाद-विवाद में उलझना नहीं चाहते थे।वे किसी भी पंथ के अनुयायी बनकर रहना पसंद नहीं करते थे, क्योंकि उनका मानना था कि पंथ बांधता है और वे मुक्त रहकर अपने विचारों को लोगों तक पहुँचाना चाहते थे। अत: कहा जा सकता है कि संत काव्यधारा में दादू अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं, जो कि उन्हें अपनी प्रतिभा व संयत वाणी के माध्यम से प्राप्त हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1.हिंदी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि - डॉ. गोविंद त्रिगुणायत, पृ. 1; प्रकाशक- साहित्य निकेतन, कानपुर

2.डॉ.ब्रजलाल वर्मा- संत कवि रज्जब,सम्प्रदाय और साहित्य,पृष्ठ संख्या -64, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर,1965

3.दादूदयाल- दादूदयाल की वाणी(भाग-2) पृष्ठ संख्या -135

4.आचार्य परशुराम चतुर्वेदी-उत्तरी भारत की संत परम्परा,पृष्ठ संख्या-517,भारतीय भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद 1972

5. दादूदयाल- दादूदयाल की वाणी, पृष्ठ संख्या -24

6. श्री वियोगी हरि-संत सुधासार, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन1953, पृष्ठ संख्या – 428

7. दादूदयाल- दादूदयाल की वाणी, पृष्ठ संख्या -85

8. वही, पृष्ठ संख्या -80

◆असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान-304022
मोबाइल.7728809324
ई -मेल–pareekpinky08@gmail.com

जैविक उर्वरकों का निर्माण और अनुप्रयोग- 'बृहत्संहिता' के विशेष संदर्भ में

◆उज्ज्वल दास

सार- 'बृहत्संहिता' की रचना अवन्ति के निवासी ज्योतिर्विद् श्रेष्ठ आदित्यदास के पुत्र वराहमिहिर ने की थी। इस ग्रंथ में ज्योतिष शास्त्र के सभी विषयों का वर्णन है। 'बृहत्संहिता' मूलतः ज्योतिष शास्त्र का एक ग्रंथ है। हालाँकि, इस ग्रंथ में पेड़ लगाने, पेड़ों की देखभाल करने आदि का वर्णन है। पेड़ों की सुरक्षा केलिए प्राकृतिक सामग्रियों का उपयोग किया जाता है। इस ग्रंथ में वृक्षों, फलों-फूलों की वृद्धि तथा मिट्टी की उत्पादक शक्ति की वृद्धि का वर्णन मिलता है। वर्तमान कृषि प्रणाली में फसलों का उत्पादन तो बढ़ गया है, परन्तु भूमि की उर्वरता एवं उत्पादक शक्ति

दिन-प्रतिदिन धीरे-धीरे घटती जा रही है। किसानों की यह गहरी धारणा है कि रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग के बिना उत्कृष्ट फसल प्राप्त करना संभव नहीं है और समय की प्रगति के कारण रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग में भारी वृद्धि हुई है। बड़ी मात्रा में इन रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से मिट्टी, कृषि उत्पादों और मनुष्यों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, पर्यावरण प्रदूषित होता है तथा जैव विविधता का संतुलन नष्ट हो जाता है।इसलिए, पर्यावरण प्रदूषण को रोकने, पृथ्वी पर सुरक्षित रूप से रहने और मिट्टी की उर्वरता और उत्पादकता को संतुलित करने के लिए, मिट्टी की गुणवत्ता बढ़ाने केलिए 'बृहत्संहिता' में जैविक उर्वरकों के निर्माण और अनुप्रयोग के द्वारा रासायनिक उर्वरकों के अनुप्रयोग को कम करते हुए, जैविक उर्वरकों के निर्माण और अनुप्रयोग को बढ़ाने के साथ प्राकृतिक उपाय में आधुनिक दृष्टि से जैविक उर्वरकों के उपयोग और प्रयोग से हम एक बेहतर समाधान का उपाय इस 'बृहत्संहिता' ग्रंथ के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं।

बीज शब्द-जैविक, उर्वरक, बृहत्संहिता, पेड़, पौधे, मिट्टी, कलम, किसान।

प्रस्तावना-इस संसार में सभी मनुष्य भोजन पर निर्भर हैं। लोग किसानों द्वारा उत्पादित फसलों से अपने भोजन की आवश्यकता को पूरा करते हैं।उपजाऊ मिट्टी फसल उत्पादन के लिए बहुत उपयोगी होती है। कृषि भूमि की उर्वरता के लिए किसान भूमि पर उर्वरकों का उपयोग करते हैं। क्योंकि जब कोई बीज उपजाऊ मिट्टी में बोया जाता है, तो वह ठीक से और सही समय पर अंकुरित होता है। 'अथर्व वेद' में कहा गया है- "**यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति"**[1]।जिस प्रकार मनुष्य शरीर को स्वस्थ रखने के लिए गुणवत्तापूर्ण भोजन करते हैं, उसी प्रकार किसान पेड़ को स्वस्थ रखने, पेड़ की गुणवत्ता बढ़ाने और कृषि क्षेत्र की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए उर्वरकों का उपयोग करते हैं।पौधों, सब्जियों, जानवरों के मल-मूत्र और शरीर के अंगों से बने उर्वरकों को जैविक उर्वरक कहा जाता है। 'अग्नि पुराण' में जैविक उर्वरक डालने की विधि, फल और फूल रहित पेड़ों पर फल एवं फूल के उत्पादन तथा जैविक उर्वरक के प्रयोग से पौधों में फल एवं फूल की वृद्धि का वर्णन किया गया है-

"फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः।
घृतशीतपयःसेकः फलपुष्पाय सर्वदा॥
मत्स्याम्भसा तु सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनः।
आविकाजसकृच्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि च॥
गोमांसमुदकञ्चेति सप्तरात्रं निधापयेत्।
उत्सेकं सर्ववृक्षाणांफलपुष्पादिवृद्धिदम्"॥इति[2]।

'अथर्ववेद' में जैविक उर्वरक शब्द के स्थान पर 'करीष' शब्द का प्रयोग किया गया है। वहाँ जैविक उर्वरक को फलवती कहा गया है-**"करीषिणीं फलवतीं स्वधाम्"**इति[3]। सुरपाल द्वारा रचित 'वृक्षायुर्वेद' में जैविक उर्वरक के उपयोग और जैविक उर्वरक के उपयोग से बीजों से अंकुर निकलने का वर्णन है-

"क्षीरनिषिक्तं बीजं बृहतीतिलभस्मसर्पिषां लिप्तम्।
गोमयमृदितमथोप्तं सद्यो जायेत धूपितं वसया"॥इति[4]।

जैविक उर्वरकों के प्रयोग का वर्णन 'मानसोल्लास' तथा 'अर्थशास्त्र' ग्रंथों में भी मिलता है।

जैविक उर्वरक की निर्माण-प्रक्रिया-

प्राचीन काल में रासायनिक उर्वरक का प्रयोग नहीं होता था।किसान शहद, घी, दूध, गोमूत्र, गोबर, विभिन्न जानवरों की हड्डियाँ, मांस, वसा, सूखी मछली, बत्तख और मुर्गी की विष्ठा, तिल, ऊशीर, विडंग, कुल्थी, उड़द, मूँग, जौ, सन का पौधे, विभिन्न प्रकार की सड़ी-गली सब्जियाँ, लोगों द्वारा

त्याग किये गये पदार्थ, नारियल की खली, सरसों की खली आदि सामग्रियों से जैविक उर्वरक तैयार करते थे। किसान को कृषि योग्य भूमि पर तिल आदि पौधे बोना चाहिए। यदि तिल आदि के पौधे में फूल और फल लग जाएँ तो उन्हें उसी ज़मीन में उपमर्दित कर देना चाहिए। वे हरे उर्वरक (green manure) के रूप में कार्य करते हैं। इस प्रकार कृषिभूमि की गुणवत्ता की वृद्धि के लिए कृषि योग्य भूमि पर हरी उर्वरक तैयार की जाती है।

"मृद्वी भूः सर्ववृक्षाणां हिता तस्यां तिलान् वपेत्।
पुस्पितांस्तांश्च मृद्नीयात् कर्मैतत् प्रथमं भुवः"॥5।

'जैविक उर्वरक' विभिन्न जीवों की हड्डियों का चूर्ण, सरसों की खली, नारियल की खली आदि को एक कंटेनर में मिलाकर तैयार किया जाता है।कहीं-कहीं घी, उशीर, तिल, शहद, विडंग, दूध, गाय का गोबर आदि सभी सामग्रियों को एक बर्तन में रखकर अच्छी तरह पीसकर मिला दिया जाता है। इस प्रकार भी जैविक उर्वरक को प्रस्तुत किया जाता है।

"घृतोशीरतिलक्षौद्रविडङ्गक्षीरगोमयैः।
आमूलस्कन्धलिप्तानां संक्रामणविरोपणम्"॥6।

गाय और भैंस आदि के रेचक का प्रयोग जैविक उर्वरक के रूप में किया जाता है। कभी-कभी गाय, भैंस आदि के रेचक पदार्थ को किसी बर्तन में कई दिनों तक रखकर पानी में मिलाकर जैविक उर्वरक तैयार किया जाता है।'भेड़ और छाग की विष्ठा दो आढ़क, तिल एक आढ़क, सत्तु एक प्रस्थ, जल एक द्रोण, गोमांस एक तुला आदि के मिश्रण को एक पात्र में सात रात्रि पर्यन्त रखकर जैविक उर्वरक तैयार किया जाता है-

"अविकाजशकृच्चूर्णस्याढके द्वे तिलाढकम्।
सक्तुप्रस्थो जलद्रोणे गोमांसतुलया सह॥
सप्तरात्रोषितैरेतैः सेकः कार्यो वनस्पतेः"।7।

यहाँ एक प्रस्थ का मतलब लगभग 600 ग्राम, एक अढ़क का मतलब लगभग 2.5 किलोग्राम, एक तुला का मतलब लगभग 4 किलोग्राम और एक द्रोण का मतलब लगभग 10 किलोग्राम समझना चाहिए।किसान बगीचे में एक गड्ढा खोदकर उसमें घरेलू कचरा, विभिन्न भूसी, सड़ी-गली सब्जियाँ, घास, गोबर आदि डालते हैं और गड्ढे को पानी से भर देते हैं और कुछ दिनों के बाद इसे अच्छी तरह से मिलाकर ज़मीन में प्रयोग करते हैं। 'बृहत्संहिता' में कहा गया है- एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और दो हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसको पूर्वोक्तानुसार दूध मिश्रित जल से भरना चाहिए। उस गड्ढे को, सूख जाने पर अग्नि से जलाना तथा उसके भस्म, घृत और शहद के मिश्रण से उसी गड्ढे का लेपन करना चाहिए। तत्पश्चात् मिट्टी के साथ उड़द, तिल और जौ के चूर्ण को मिलाकर उस गड्ढे को भरना और मत्स्य-मांस युक्त जल से उस गड्ढे को, ऊपर से तब तक ठोकना पीटना चाहिए, जब तक वह कठिन समतल न हो जाए। इसप्रकार भी जैविक उर्वरक तैयार किया जाता है-

"हस्तायतं तद्विगुणं गभीरं खात्वावटं
प्रोक्तजलावपूर्णम्।
शुष्कं प्रदग्धं मधुसर्पिषा तत् प्रलेपयेद्
भस्मसमन्वितेन॥
चूर्णीकृतैर्माषतिलैर्यवैश्च प्रपूरयेद् मृत्तिकयान्तरस्थैः।
मत्स्यामिषाम्भस्सहितं च हन्याद्यावद् घनत्वं समुपागतं तत्"॥8।

जैविक उर्वरक की प्रयोग पद्धति-

हमने जैविक उर्वरक की निर्माण-प्रक्रिया के बारे में जाना। इसका उपयोग कैसे, कब और कहाँ होने चाहिए?- यह जिज्ञासा होती है। एक-एक उपादान, जैसे गाय का गोबर, हड्डी, सरसों का खली आदि का भी उपयोग किया जाता है। साथ ही सभी सामग्रियों को एक साथ मिलाकर उपयोग किया जाता है। मिश्रित उर्वरक कभी-कभी बीज बोने या

पेड़ लगाने से पहले और पेड़ लगाने के बाद भी मिट्टी में डाला जाता है। बीज से अंकुरण के बाद, पेड़ लगाने के बाद और पेड़ की वृद्धि के लिए मिट्टी में गोबर, हड्डी का चूर्ण, मछली का चूर्ण और सरसों आदि की खली आदि डाली जाती हैं। 'अर्थशास्त्र' में कहा गया है- **"प्ररूढाँश्चाशुष्ककटुमत्स्याँश्च स्नुहिक्षीरेण पाययेत्"**[9]। मिट्टी के कीड़े जमीन में बोये गये बीजों को नष्ट कर देते हैं। इनसे बचने के लिए और बीजों के शीघ्र अंकुरण के लिए बीजों को बोने से पहले कुछ दिनों तक पानी या दूध में भिगोकर गोबर और मांस आदि उर्वरकों के साथ मिलाके बोना चाहिए।

"वासराणि दश दुग्धभावितं
बीजमाज्ययुतहस्तयोजितम्।
गोमयेन बहुशो विरूक्षितं
क्रौडमार्गपिशितैश्च धूपितम्॥
मांससूकरवसासमन्वितं रोपितं च
परिकर्मितावनौ"।[10]।

धान, उड़द, तिल आदि के चूर्ण और सत्तू को सड़े हुए मांस के साथ मिलाकर सिंचित या भिगोकर और हल्दी पाउडर लगाने से इमली के बीज अंकुरित होते हैं-

"तिन्तिडीत्यपि करोति वल्लरीं
व्रीहिमाषतिलचूर्णसक्तुभिः।
पूतिमांससहितैश्च सेचिता धूपिता च सततं
हरिद्रया"॥[11]।

कपित्थ के बीज को अंकुरित करने हेतु 'बृहत्संहिता' में कहा गया है-

"कपित्थवल्लीकरणाय
मूलान्यास्फोतधात्रीधववासिकानाम्।
पलाशिनी वेतससूर्यवल्ली श्यामातिमुक्तैः सहिताष्टमूली॥
क्षीरे शृते चाप्यनया सुशीते ताला शतं स्थाप्य
कपित्थबीजम्।
दिने दिने शोषितमर्कपादैर्मासं विधिस्त्वेष
ततोऽधिरोप्यम्"॥ [12]।

अर्थात्, विष्णुक्रान्ता, आँवला, धव, वासा आदि को उनके पत्रों सहित वेंत, सूर्यमुखी, निसोत और अतिमुक्तक इन आठ बूटियों के मूलों को दूध में भिगोकर आँच पर खौलाकर ठण्डा करते हुए उसमें कपित्थ के बीजों को डालना चाहिए। फिर सौ बार ताली बजाने में जितना समय लगता है, उतने समय के पश्चात् दूध से उन बीजों को निकालकर धूप में सूखने देना चाहिए। इस तरह इस प्रक्रिया को नित्य एक मास तक करते रहने के बाद में उन बीजों को बोना चाहिए।

विभिन्न पौधों में कलम यानि ग्राफ्टिंग के लिए जैविक उर्वरकों का उपयोग किया जाता है।बहुत कम समय में उत्कृष्ट और उच्च गुणवत्तावाले फल और फूल की प्राप्ति के लिए आम, जामुन, कटहल, अनार, अमरूद, गुलाब, गुड़हल आदि वृक्षों में ग्राफ्टिंग की जाती है। ग्राफ्टिंग केलिए 'बृहत्संहिता' में कहा गया है-

"पनसाशोककदलीजम्बूकुचदाडिमाः
द्राक्षपालीवताश्चै बीजपूरातिमुक्तकाः॥
एते द्रुमाः काण्डरोप्या गोमयेन प्रलेपिताः।
मूलच्छेदेऽथवा स्कन्धे रोपणीयाः परं ततः"॥[13]।

अर्थात्, कटहल, अशोक, केला, जामुन, लकुच (बड़हर), अनार, दाख, पालीवत, बिजौरा, अतिमुक्तक आदि वृक्षों की शाखाओं में गोमय लेपन कर अन्य विजातीय वृक्ष की मूल अथवा शाखा पर तब तक लगाये रखना चाहिए, जब तक कि उसमें मूल जड़ नहीं आ जाय। तत्पश्चात् उसे वहाँ से हटाकर उसका आरोपण करना चाहिए, इस प्रकार वृक्षों का कलम लगाना चाहिए।

पौधों पर कीटनाशकों के रूप में भी जैविक उर्वरकों का उपयोग किया जाता है। सर्दी, गर्मी और बरसात के मौसमों में पेड़ों पर विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ लग जाती हैं।रोगग्रस्त वृक्षों की चिकित्सा केलिए जैविक उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है-

"चिकित्सितमथैतेषां शस्त्रेणादौ विशोधनम्।

विडङ्गघृतपङ्क्तान् सेचयेत् क्षीरवारिणा"॥[14]।

अर्थात्, सर्वप्रथम उपरोक्त प्रकार के वृक्षों की जिस शाखा में विकृति हो, उसे किसी उपयुक्त शस्त्र से काट देना चाहिए; तत्पश्चात् विडंग, घी तथा पंक (गीली मिट्टी) के मिश्रण से उस पर लेपन कर दुग्ध और पानी के मिश्रण से उस वृक्ष का सिंचन करना चाहिए।कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि कुछ पेड़ फल-फूल विहीन रह जाते हैं।जैविक उर्वरक के प्रयोग से उन पेड़ों में फूल और फल लगते हैं-

"फलनाशे कुलत्थैश्च माषमुद्गस्तिलैर्यवैः।

शृतशीतपयःसेकः फलपुष्पसमृद्धये"॥[15]।

अर्थात्,यदि वृक्ष में उचित काल के बाद भी फल नहीं लगते हैं, तो उस वृक्ष में शीघ्र फूल और फल लगने केलिए कुल्थी, उड़द, मूंग, तिल और जौ के मिश्रण को दूध में डालकर आँच पर खौला देना चाहिए, फिर ठण्डा होने के पश्चात् उससे वृक्षों में सिंचन करना चाहिए।

जैविक उर्वरकों का महत्त्व-

जैविक उर्वरक किसानों के लिए अत्यंत उपयोगी पदार्थ है। जैविक उर्वरकों में पौधों के भोजन के लगभग सभी तत्व मौजूद होते हैं। जैविक उर्वरक के प्रयोग के बाद पौधे मिट्टी से उन खाद्य तत्त्वों को ग्रहण कर लेते हैं।परिणामस्वरूप, पेड़ पर सही समय पर फल और फूल आते हैं। 'बृहत्संहिता' में कहा गया है- **"जायते कुसुमयुक्तमेव तत्"**[16]। रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मिट्टी की उर्वरता कम हो जाती है।मिट्टी में मौजूद अणुजीव मर जाते हैं। इससे जैव विविधता का संतुलन नष्ट हो जाता है। इसके अलावा रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से पर्यावरण प्रदूषित होता है।इसका मानव शरीर पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।लेकिन जैविक उर्वरकों से मिट्टी में पानी की मात्रा बढ़ती है। जैविक उर्वरक मिट्टी, खाद्य पदार्थ और कृषि क्षेत्र में स्थित पानी से होनेवाले प्रदूषण की मात्रा को कम करते हैं। कूड़ा-कचरा जहाँ भी जमा होता है, वह विभिन्न बीमारियों का कारण बनता है। हालाँकि, यदि कचरे का उपयोग जैविक उर्वरकों के उत्पादन में किया जाता है, तो बीमारी कम हो जाती है। ग्राफ्टिंग प्रक्रिया से किसानों को बहुत कम समय में अच्छी गुणवत्तावाले फल एवं फूल प्राप्त होते हैं।जैविक उर्वरकों के प्रयोग से लाभकारी अणुजीवों की क्रियाशीलता में भी वृद्धि होती हैऔर केंचुए, चींटियाँ आदि मिट्टी में बिल बना देती हैं। परिणामस्वरूप, हवा मिट्टी में आसानी से चल सकती है।इससे पौधे सतेज होते हैं और पौधों, जड़ों, तनों, फलों और फूलों की अधिक वृद्धि होती है। 'बृहत्संहिता' में कहा गया है-**"वल्मीगुल्मलतानां च फलपुष्पाय सर्वदा"**[17]। 'अग्निपुराण' में कहा गया है- **"विडङ्गमत्स्यमांसाद्भिः सर्वेषां दोहदं शुभम्"**[18]।

निष्कर्ष-

प्रस्तुत शोध आलेख के वर्णन-विवेचन एवं विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि वराहमिहिराचार्य को जैविक उर्वरकों की तैयारी, और उपयोगिता की गहन समझ थी।जैविक उर्वरकों को 'पर्यावरण के मित्र' कहा जाता है।पर्यावरण के संरक्षण और मनुष्यों के सुस्वास्थ्य केलिए जैविक उर्वरक का प्राधान्य है।इस विधि से कोई भी व्यक्ति अपने घर में ही बहुत कम लागत और कम समय में जैविक उर्वरक बना सकता है। जैविक उर्वरकों से उत्पादित फसलें उच्च गुणवत्तावाली एवं पौष्टिक होती हैं जो इंसान के स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हितकारी होती हैं।

संदर्भ :

1.अथर्ववेद. 10.6.33

2. अग्निपुराण.247.27-29

3. अथर्ववेद. 19.31.3

4.वृक्षायुर्वेद.53

5.बृहत्संहिता.55.2

6.वही. 55.7

7.वही.55.17-18

8.वही.55.24-25

9.अर्थशास्त्र. 2.40.24

10.बृहत्संहिता. 55.19-20

11.वही. 55.21

12.वही. 55.22-23

13.वही.55.4-5

14.वही. 55.15

15.वही. 55.16

16वही. 55.20

17वही. 55.18

18अग्निपुराण. 247.31

संदर्भ ग्रंथसूची-

1. अग्निपुराणम्, व्याख्याकार-शिवप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
2. अथर्ववेद, अनुवादक और सम्पादक- विजनविहारी गोस्वामी, हरफ प्रकाशनी, कलकाता, 1358
3. ऋग्वेद, अनुवादक-गंगा सहाय शर्मा, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
4. बृहत्संहिता, सम्पाद कोव्याख्याकारश्च- सुरकान्त झा, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2009
5. बृहत्संहिता, सम्पादक-पञ्चानन तर्करत्न, अनुवादक- धीरानन्द काव्यनिधि, कलिकाता, 1815
6. महाभारत (प्रथम खण्ड), अनुवादक- रामनारायणदत्त शास्त्री, गीताप्रेस, गोरक्षपुर
7. महाभारत(द्वितीय खण्ड), अनुवादक- रामनारायणदत्त शास्त्री, गीताप्रेस, गोरक्षपुर
8. महाभारत(तृतीय खण्ड) अनुवादक- रामनारायणदत्त शास्त्री, गीताप्रेस, गोरक्षपुर
9. महाभारत(चतुर्थ खण्ड), अनुवादक- रामनारायणदत्त शास्त्री, गीताप्रेस, गोरक्षपुर
10. महाभारत(पञ्चम खण्ड), अनुवादक- रामनारायणदत्त शास्त्री, गीताप्रेस, गोरक्षपुर
11. महाभारत(षष्ठ खण्ड), अनुवादक- रामनारायणदत्त शास्त्री, गीताप्रेस, गोरक्षपुर

◆शोधार्थी, संस्कृतविभाग,
पांडिच्चेरी विश्वविद्यालय,
कालापेट, पुदुच्चेरी- 605014
ई-मेल -ujjwal95das@gmail.com

हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय व्याप्ति

◆ डॉ.ऐश्वर्या झा

शोध सार : भूमंडलीकरण के इस दौर में जब भाषाओं की महत्ता समाप्त होती जा रही है, कई भाषाएँ समाप्त हो गयी हैं; हिंदी निरंतर अपना दायरा बढ़ा रही है। वर्ल्ड इकनोमिक फोरम के पावर लैंग्वेज इंडेक्स में विश्व की ऐसी भाषाओं की रैंकिंग तैयार की गई है जो सन् 2050 तक विश्व की शक्तिशाली भाषाओं में शामिल होंगी।

बीज शब्द: भूमंडलीकरण, पावर लैंग्वेज

इंडेक्स,मातृभाषा।

संयुक्त राष्ट्र की शैक्षिक और सांस्कृतिक एजेंसी – यूनेस्को के अनुसार, विश्व में 7,000 से अधिक भाषाएँ हैं जिनमें से भारत की 1635 मातृभाषाओं और प्रमुख 22 भाषाओं को आधिकारिक मान्यता प्राप्त है । हिंदी एवं हिंदी समूह भाषियों की अनुमानित संख्या सौ करोड़ से भी अधिक है। वर्ल्ड लैंग्वेज डेटाबेस के 22वें संस्करण 'इथोनोलॉग' को मानें तो 61.5 करोड़ से अधिक लोग हिंदी भाषी हैं,जो संख्या के आधार पर विश्व में तीसरे स्थान पर है। पहले स्थान पर अंग्रेज़ी (113.2 करोड़), फिर चीन की मैंड्रेन भाषा (111.7 करोड़) हैं। भारत एक बहुभाषी देश हैं, संसार में 20 ज़्यादा बोली जानेवाली भाषाओं में 6 भारतीय भाषाएँ शामिल हैं जिनमें हिंदी (तीसरे), बंगला भाषा (सातवें), उर्दू (11वें), मराठी(15वें), तेलगू (16वें) एवं तमिल भाषा (19वें) स्थान पर हैं। आज विश्व के सभी महाद्वीपों और लगभग एक सौ चालीस देशों में हिंदी भाषा किसी न किसी रूप में प्रयुक्त होती है।इक्कीसवीं सदी में हिंदी विश्व के विराट फलक पर अपनी उपस्थिति दर्ज़ करवा रही है। निःसंदेह संख्याबल के आधार पर हिंदी विश्वभाषा है। सन् 2011 की भाषाई जनगणना के अनुसार हिंदी 52.8 करोड़ व्यक्तियों या 43.6 प्रतिशत आबादी के साथ सबसे व्यापक रूप से बोली जाती है। आज हिन्दी को विश्व भाषा के रूप में सर्वत्र मान्यता मिलने के कारण उसका विशाल शब्दभण्डार, वैज्ञानिकता, शब्दों और भावों को आत्मसात करने की प्रवृत्ति आदि के साथ ज्ञान-विज्ञान की भाषा के रूप में अपनी उपयुक्तता एवं विलक्षणता हैं। लगभग 80 करोड़ आम जनों द्वारा प्रयोग में लाई जानेवाली और विश्व के 176 से अधिक विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जानेवाली हिन्दी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना चुकी है और नए आँकड़ों के अनुसार हिन्दी के बोलनेवाले विश्व में सबसे ज़्यादा हो गए हैं। हिन्दी सम्पूर्ण भारत की अस्मिता है,पहचान है। आज यह सिर्फ भारत में ही नहीं विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक बोली, पढ़ी-लिखी तथा समझी जाती है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में जब भाषाओँ की महत्ता समाप्त होती जा रही है,कई भाषाएँ समाप्त हो गयी हैं।हिंदी निरंतर अपना दायरा बढ़ा रही है। वर्ल्ड इकनोमिक फोरम के पावर लैंग्वेज इंडेक्स में विश्व की ऐसी भाषाओं की रैंकिंग तैयार की गई है, जो सन् 2050 तक विश्व की शक्तिशाली भाषाओं में शामिल होंगी। हिंदी इस इंडेक्स की प्रथम दस भाषाओँ में शामिल है। लेकिन इसमें ऊर्दू और हिंदी की स्थानीय बोलियों को नहीं जोड़ा गया है। अगर हिंदी की विविध शैलियों को शामिल कर लिया जाए तो हिंदी का स्थान अवश्य ही प्रथम तीन भाषाओं में होगा।

भारत के बाहर फिजी, मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद और दक्षिण अफ्रीका में बसे लाखों प्रवासी भारतीय आज मातृभाषा के रूप में हिंदी का व्यवहार करते हैं। ये प्रवासी भारतीय परिवार हिंदी का सम्मान करते हैं तथा हिंदी का प्रचार -प्रसार चाहते हैं। उनके लिए हिंदी समस्त भारतीयों को जोड़े रखने का सांस्कृतिक सेतु है। भारत के पड़ोसी देशों में पाकिस्तान,नेपाल,बंगला देश,म्यांमार में हिंदी भाषा बोलनेवालों और समझनेवालों की संख्या

पर्याप्त है। पाकिस्तान की राजभाषा 'उर्दू' भाषा विज्ञान की दृष्टि से खड़ीबोली-प्रधान शैली है। नेपाल में हिंदी पूरे देश के 53 प्रतिशत नेपालियों की मातृभाषा है। वस्तुतः हिंदी विदेशों में बसे भारतीयों के मध्य संपर्क भाषा के रूप में व्यवहृत होती है। अमेरिका की भाषानीति में दस नई विदेशी भाषाओं को जोड़ा गया है, जिनमें हिंदी भी शामिल है। मॉरीशस एवं ब्रिटेन में भी हिंदी का वर्चस्व बढ़ा है। संयुक्त राष्ट्र के गठन के 75 साल वर्ष 2020 में पूरे होने से कुछ समय पहले ही संयुक्त राष्ट्र संघ ने हिंदी न्यूज़ बुलेटिन की भी शुरुआत की थी। आज भारत के बाहर 260 से भी अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी की पहुँच है। जहाँ भी भारतीय बसे हैं, वहाँ पर हिंदी है। विदेशों में 35 से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ लगभग नियमित रूप से हिंदी में प्रकाशित हो रही हैं।

आज का युग 'सूचना प्रौद्योगिकी' का युग है, इस क्षेत्र में भी हिंदी पीछे नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय मंच पर हिंदी की स्थापना में प्रौद्यौगिकी का मुख्य योगदान है। तकनीक की सहायता से ही अहिंदी भाषी क्षेत्रों या विदेशों में हिंदी भाषा को हम पहुँचा पा रहे हैं। "जिस कंप्यूटर तथा उसकी भाषा को लेकर हम भयभीत तथा सहमे हुए थे,उसे जीवन के हर क्षेत्र में जोड़कर हमने अपनी भाषाओं से जीत लिया है। हिंदी भाषा इस दृष्टि से भी अग्रणी है। हिंदी में शब्द-संसाधन का कार्य करने के लिए आज बाज़ार में जिस्ट कॉर्ड,जिस्ट शैल, सुलिपि, आकृति, ए.पी.एस.शब्द रत्न,लीप ऑफिस,अक्षर फॉर विंडोज़, सुविन्डोज़, प्रकाशक तथा इसी प्रकार के अन्य अनेक सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं। बैंकों के लिए अनेक द्विभाषी सॉफ्टवेयर भी अब विकसित कर लिए गए हैं। अंग्रेज़ी -हिंदी और इसी प्रकार अन्य भारतीय भाषाओं के परस्पर अनुवाद की सम्भावनाएँ भी कंप्यूटर पर खोज ली गयी हैं। अनेक प्रकार के हिंदी फोंट्स भी अब बाज़ार में उपलब्ध हैं। माइक्रोसॉफ्ट कंपनी, सी-डैक तथा आई.बी.एस टाटा द्वारा बाज़ार में लाये गए हिंदी पी.सी.डॉस की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। हिंदी डॉस के आ जाने से अब तक जो निर्देश अंग्रेज़ी देती रही है, वे भी हिंदी में दिए जा सकते हैं। यह उपलब्धि वास्तव में हिंदी के लिए 'मील का पत्थर 'सिद्ध हुई है।"[1] इक्कीसवीं सदी में हिन्दी भाषा गतिमान है। नए-नए आविष्कार और ग्लोबल होते बाज़ार ने हिंदी को वैश्विक तो बनाया है ही। इसके स्वरूप में भी परिवर्तन लगातार ज़ारी है। हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली और दुरूहता की समस्या के निदान हेतु तकनीक कारगर सिद्ध हो रही है। हिंदी ब्लॉग्स अपने पाठकों को बेहद सरल एवं सहज शब्दावलियों के माध्यम से ज्ञान उपलब्ध करा रहे हैं। हिंदी को शब्दिक रूप से समृद्ध और उसकी सम्प्रेषणीयता को प्रभावी बना रहे हैं। हिंदी ब्लॉग्स में उपलब्ध पाठ्य सामग्री युवाओं को रोचक ढंग से पढ़ने का विकल्प प्रस्तुत कर रही है, जिससे हिंदी अब किसी क्षेत्र या राष्ट्र तक ही सीमित नहीं रही है। इलेक्ट्रॉनिक संचार के क्षेत्र में हिंदी के इस बढ़ते प्रयोग से इसकी अंतरराष्ट्रीय भूमिका भी मजबूत हो रही है। इन ब्लॉगिंग साइट्स के माध्यम से आज लेखक और पाठक एक दूसरे से सीधा संवाद करते हैं। इस नवीन तकनीक ने हिंदी भाषा को एक वैश्विक मंच प्रदान किया है। हिंदी भाषा की यह व्यापकता उसे अन्य भाषाओं से अधिक विकासशील बना रही है

और हिंदी को विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में उल्लेखनीय भूमिका निभा रही है।

आज हिंदी भाषा का अध्ययन-अध्यापन भारत में ही नहीं, विश्व के लगभग सभी प्रमुख देशों में हो रहा है। कहीं यह अध्ययन प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर हो रहा है तो कहीं विश्वविद्यालय स्तर पर। "विश्व के विभिन्न देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन उनकी अपनी भाषा में होता है। यही कारण है कि विभिन्न देश अपनी भाषाओं में हिंदी -शिक्षण सामग्री तैयार करते हैं। विभिन्न विश्वविद्यालयों ने अपनी आवश्यकता के अनुसार हिंदी की पाठ्य पुस्तकें,द्विभाषी शब्द कोश आदि तैयार किए हैं। आज सबसे अधिक व्यापक स्तर पर हिंदी का अध्ययन और अध्यापन अमरीका और कनाडा में हो रहा है।"[2] ब्रिटेन के अनेक विद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई केलिए विशेष कक्षाएँ चलायी जाती हैं। नॉटिंघम में स्थित 'कला निकेतन स्कूल' हिंदी पढ़ने का सबसे बड़ा केंद्र है। लंदन के भारतीय विद्याभवन में हिंदी सहित भारतीय भाषाओं एवं संस्कृति के प्रचार -प्रसार के व्यवस्थित प्रयास किए जाते हैं। मॉरीशस में हिंदी में स्नातक, स्नातकोत्तर, पी एच.डी आदि करने की सुविधा है। महात्मा गाँधी संस्थान,रविंद्र नाथ टैगोर संस्थान,मॉरीशस विश्वविद्यालय आदि में हिंदी में पढ़ाई की जा सकती है। फिजी,जहाँ फरवरी 2023 में विश्व हिंदी सम्मलेन आयोजित हुआ है,में हिंदी भाषा को संवैधानिक दर्ज़ा प्राप्त है। विश्व में भारत के अलावा फिजी ही मात्र राज्य है, जहाँ हिंदी को संविधान में फिजियन और अंग्रेज़ी के साथ बराबरी की मान्यता है। फिजी में 'आर्य प्रतिनिधि सभा' हिंदी भाषा की उन्नति के लिए सन् 1904 से लगातार कार्य कर रही है। 'फिजी सेवाश्रम संघ' भी हिंदी के प्रचार -प्रसार के लिए प्रभावी ढंग से कार्य कर रहा है। फिजी का शिक्षा मंत्रालय हिंदी गतिविधियों को प्रचारित करने के लिए हर त्रिमाही में 'नवज्योति 'शीर्षक से बुलेटिन का प्रकाशन करता है। वस्तुतः विश्व के अलग -अलग देशों में प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा तक हिंदी शिक्षण की व्यवस्था सुलभ हो गयी है। वैश्वीकरण के इस युग में बदलते हुए आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में हिंदी भाषा को लेकर भी व्यापक बदलाव आया है। यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेंसिल्वेनिया में हिंदी के प्रोफेसर रहे भाषा वैज्ञानिक डॉ. सुरेंद्र गंभीर अपने शोधग्रंथ 'प्रवासी भारतीयों में हिंदी कहानी 'में लिखते हैं-"जीवित भाषाओं के लिए यह आवश्यक है कि उनके प्रयोग क्षेत्र सजीव और सशक्त हों। प्रयोग क्षेत्रों के अभाव में भाषा के प्रयोग का कोई प्रयोजन नहीं बचता है।"[3] हिंदी भाषा की प्रयोजनीयता एवं सजीवता असंदिग्ध है।

हिंदी भाषा विदेशी भाषाओं को न केवल स्वीकार करती है, बल्कि विश्व की समस्त भाषाओं को आत्मसात करने की क्षमता रखती है। हिंदी के विकास के लिए विश्व की करीब पैंतीस सौ विदेशी कृतियों का हिंदी में अनुवाद किया जा चुका है। यह संख्या भी कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। 'विश्व हिंदी सचिवालय' मॉरीशस में बनना और हिंदी को प्रौद्योगिकी से जोड़ने के लिए किए जानेवाले सतत प्रयास इसे संयुक्त राष्ट्र की भाषाओं में स्थान दिलाने का प्रयास है।"आज जब 21वीं सदी में वैश्वीकरण के

दबावों के चलते विश्व की तमाम संस्कृतियाँ एवं भाषाएँ आदान -प्रदान व संवाद की प्रक्रिया से गुज़र रही हैं तो हिंदी इस दिशा में विश्व मनुष्यता को निकट लाने के लिए सेतु का कार्य कर सकती है। उसके पास पहले से ही बहुसांस्कृतिक परिवेश में सक्रिय रहने का अनुभव है जिससे वह अपेक्षाकृत ज़्यादा रचनात्मक भूमिका निभाने की स्थिति में है। हिंदी सिनेमा अपने संवादों एवं गीतों के कारण विश्व स्तर पर लोकप्रिय हुए हैं। उसने सदा-सर्वदा से विश्वमन को जोड़ा है। हिंदी की मूल प्रकृति लोकतांत्रिक तथा रागात्मक संबंध निर्मित करने की रही है। वह विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की ही राष्ट्र भाषा नहीं है बल्कि पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बंग्लादेश, फिजी, मॉरीशस, गुयाना, त्रिनिदाद तथा सुरीनाम जैसे देशों की सम्पर्क भाषा भी है। वह भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों के बीच खाडी देशों, मध्य एशियाई देशों, रूस, समूचे यूरोप, कनाडा, अमेरिका तथा मैक्सिको जैसे प्रभावशाली देशों में रागात्मक जुड़ाव तथा विचार-विनिमय का सबल माध्यम है।"[4]

बाज़ार के कारण भी हिंदी का प्रचार-प्रसार व्यापक हो रहा है।हिंदी विश्व की उन भाषाओं में से है जिसमें साहित्य-सृजन भारत में ही नहीं, विश्व के कई देशों में न सिर्फ प्रवासी बल्कि विदेशियों के द्वारा भी हो रहा है। प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्यकारों में पं.लक्ष्मी नारायण चतुर्वेदी, सोमदत्त बखोरी, पं.कमला प्रसाद मिश्र, बाबू सिंह, बलराम वशिष्ठ, अमर सिंह रमण, सूर्यप्रसाद वीरे आदि उल्लेखनीय नाम हैं। विदेशी साहित्यकार भी परिश्रम तथा लगन से हिंदी भाषा पर अधिकार प्राप्त कर मौलिक साहित्य की रचना कर रहे हैं। अंग्रेज़ कवि जॉन चेम्बरलेन ने हिंदी में अनेक गीत लिखे हैं। फादर जे.टी.टॉमसन ने 'खीष्ठ चरितामृत 'दोहा -चौपाई शैली में लिखा। जर्मन कवि फ्रेडरिक जॉनसन ने खंड काव्य "वह श्रेष्ठ मूलक था 'की रचना की। विश्व के अनेक देशों में हिंदी पत्र -पत्रिकाओं का प्रकाशन लंबी अवधि से हो रहा है जिससे हिंदी के विश्वजनीन रूप का परिचय मिलता। है। विदेशों में हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत सन् 1885 में कालाकांकर नरेश के संपादन में लंदन से प्रकाशित 'हिंदुस्तान' से हुआ। "आज विदेशों में कई हिंदी पत्र निकल रहे हैं, इनमें कुछ नियतकालिक हैं तो कुछ विशिष्ट अवसरों पर प्रकाशित होते हैं। इनकी हज़ारों प्रतियाँ छपती हैं तथा ये भारतीयों के मध्य बहुत लोकप्रिय हैं।"[5]

भारत आज शिक्षा, उद्योग और तकनीक के हिसाब से दुनिया के अग्रणी देशों में है और इसकी मुख्य भाषा हिंदी आनेवाले समय में और पुरज़ोर तरीके से अपनी उपस्थिति दर्ज़ कराएगी।भारत को आत्मनिर्भर, विश्वगुरु और विश्वशक्ति की महिमा से मंडित करने में हिंदी भाषा का अमूल्य योगदान है। हिंदी का प्रश्न भाषा या सम्प्रेषण की सुविधा का नहीं है, बल्कि राष्ट्रीय स्वाभिमान और राष्ट्रीय एकता का भी है। हिंदी केवल भाषा नहीं है वरन् भारतीय संस्कृति की सबल ,समर्थ और सशक्त संवाहिका भी है।आज हिंदी भाषा केवल भारत की भाषा ही नहीं रह गई है ,वह अपना वैश्विक रूप भी ले रही है। आज विश्व का हर छठा व्यक्ति हिंदी बोलता और समझता है। आज

हिंदी विश्व की सबसे शक्तिशालिनी भाषा बनने की दिशा में निरंतर अग्रसर है। अब यह समय की माँग है कि हिंदी का विश्व उसके महत्त्व को समझे तथा हर स्तर पर उसके प्रयोग को बढ़ावा दे ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. राजभाषा भारती, प्रकाशक- भारत सरकार,गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग; वर्ष 39, अंक15; जुलाई –सितम्बर 2017।
2. हिंदी और उसकी उपभाषाएँ :विमलेश कांति वर्मा; प्रकाशन विभाग ,सूचना और प्रसारण मंत्रालय ,भारत सरकार; 2016 ,पृ 336
3. प्रवासी भारतीयों में हिंदी की कहानी :सं. डॉ.सुरेंद्र गंभीर; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2017 ,पृ. 110
4.http://www.abhivyakti-hindi.org/parikrama/delhi/2011/09_12_11.html
5. हिंदी और उसकी उपभाषाएँ:विमलेश कांति वर्मा, प्रकाशन विभाग; सूचना और प्रसारण मंत्रालय,भारत सरकार, 2016 ,पृ. 343

◆सह आचार्य, हिंदी विभाग,
त्रिपुरा केंद्रीय विश्वविद्यालय
मोबाइलनंबर -9810407023
ईमेल:aishwarya@ss.du.ac.in

विजय बागरी जी के काव्य में समकालीन विद्रूप व्यवस्था का चित्रण

◆दिलसुखराम

कुंजी शब्द : समकालीन, विद्रूप, आक्रोश, काव्य, सामजिक सरोकार, क्षोभ, विसंगतियाँ, समाज, साहित्य।

शोध सारांश:- साहित्य सामाजिक यथार्थ की जीवंत व्याख्या होता है। इसलिए समाज के संस्पर्श से वह अछूता नहीं रह सकता। बिना साहित्य के समाज का स्पष्ट प्रतिबिंब नहीं देखा जा सकता, साहित्यकार अपने साहित्य में मानवीय संवेदनाओं को उजागर करता है। बागरी जी की रचनाओं में आक्रोश एवं विद्रोह की प्रधानता के साथ ही मानवीय संवेदना का भाव भी मुखरित हुआ है। वे एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते हैं, जो शोषण मुक्त हो जहाँ अत्याचार के लिए कोई स्थान न हो। विजय बागरी 'विजय' के गीतों में जीवन और जगत् की उन सारी विद्रूपताओं और विडम्बनाओं के संश्लिष्ट चित्र हैं, जो मन को उद्वेलित करते हैं। समाज के प्रति सरोकार को कवि/गीतकार 'विजय' ने पूरी ईमानदारी और शिद्दत के साथ उकेरा है। विजय बागरी जी की काव्य रचनाएँ हमारे जीवन के इर्द-गिर्द की रचनाएँ हैं। ये सरल, सहज, सार्थक और सारगर्भित होने के साथ-साथ गूढ़ अर्थ ली हुई हैं। विजय बागरी जी ने सामाजिक विद्रूपताओं के विरुद्ध अधिकारपूर्वक कलम चलाई है। इसलिए रचनाएँ यथार्थ के भीतरी-बाहरी, जिए-भोगे, गहरे आत्मसंघर्षों, तनावों-दबावों से विवश होकर रची जाती हैं । जीवन जगत की कठोर स्थितियों और परिस्थितियों का प्रभाव- दबाव इनके समकालीन काव्य में

इतना अधिक बढ़ गया है कि कवि स्वयं ही इन विद्रूपताओं से जूझकर लहू -लुहान है। बागरी जी का काव्य स्वयं से, अपने परिवेश से मुठभेड़ का काव्य है। इनका काव्य महामानव और लघुमानव की बहस को समाप्त करता हुआ, आम आदमी को केंद्र में रखता है। इस सर्जनकर्म में परिस्थितियों के घात- प्रतिघात से बदलती राजनीतिक -सांस्कृतिक, आर्थिक -नैतिक संवेदनाओं पर ध्यान केंद्रित करना पड़ता है। इनके काव्य में समकालीन जीवन जगत के यथार्थ की खुली अभिव्यक्ति के कारण राजनीतिक विकृतियों, विद्रूपताओं, जीवन के हर क्षेत्र में विघटित टूटते मूल्यों, पीड़ाओं-कुंठाओं, मरते सपनों और विक्षोभों ने इस काव्य सृजन की अनुभूतियों- संवेदनाओं ,अनुभव-पुंजों में अभिव्यक्ति पाई है ।

उद्देश्य:-

1.साहित्य व समाज के संबंधों की पड़ताल करना

2.नवगीतों में समकालीन चेतना के स्वरों की पहचान करना

3.विजय बागरी जी के सामजिक सरोकारों की पड़ताल करना

4.विजय बागरी जी के काव्यों के विविध और विशिष्ट पक्षों को प्रकाश में लाना

5. विजय बागरी जी के काव्यों / नवगीतों पर शोधानुसंधान को प्रोत्साहित करना ।

साहित्य सामाजिक यथार्थ की जीवंत व्याख्या होता है। इसलिए समाज के संस्पर्श से वह अछूता नहीं रह सकता । बिना साहित्य के समाज का स्पष्ट प्रतिबिंब नहीं देखा जा सकता। साहित्यकार अपने साहित्य में मानवीय संवेदनाओं को उजागर करता है। बागरी जी की रचनाओं में आक्रोश एवं विद्रोह की प्रधानता के साथ ही मानवीय संवेदना का भाव भी मुखरित हुआ है। वे एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते हैं जो शोषण मुक्त हो, जहाँ अत्याचार के लिए कोई स्थान न हो-

“धीरज टूटा
विद्रोही स्वर,
पीड़ा के झपटे।
मन की परतें
तोड़-फोड़कर, ज्वालामुखी फटे ।।
अंतर से,
फूटा गुबार,
लावा की तरह उबलता ।
संयम के
तटबंध तोड़कर,
ज्यों सैलाब मचलता
अच्छे दिन के
पथ के रोड़े,
अब तक नहीं हटे । । “(1)

विजय बागरी जी की काव्य रचनाएँ हमारे जीवन के इर्द-गिर्द की रचनाएँ हैं । ये काव्य सरल, सहज, सार्थक और सारगर्भित होने के साथ-साथ गूढ़ अर्थ लिए हुए हैं। विजय बागरी जी ने सामाजिक विद्रूपताओं के विरुद्ध अधिकारपूर्वक कलम चलाई है। इसलिए उनकी रचनाएँ यथार्थ के भीतरी - बाहरी,जिए-भोगे, गहरे आत्मसंघर्षों, तनावों-दबावों से विवश होकर रची जाती हैं । जीवन जगत की कठोर स्थितियों और परिस्थितियों का प्रभाव- दबाव इनके समकालीन काव्य में इतना अधिक बढ़ गया है कि कवि स्वयं ही इन विद्रूपताओं से जूझकर लहू-लुहान है। बागरी जी का काव्य स्वयं से, अपने परिवेश से मुठभेड़

का काव्य है। इनका काव्य महामानव और लघुमानव की बहस को समाप्त करता हुआ, आम आदमी को केंद्र में रखता है। इस सर्जनकर्म में परिस्थितियों के घात- प्रतिघात से बदलती राजनीतिक -सांस्कृतिक, आर्थिक -नैतिक संवेदना पर ध्यान को केंद्रित करना पड़ता है। इनके काव्य में समकालीन जीवन जगत के यथार्थ की खुली अभिव्यक्ति के कारण राजनीतिक विकृतियों, विद्रूपताओं, जीवन के हर क्षेत्र में विघटित टूटते मूल्यों, पीड़ाओं-कुंठाओं, मरते सपनों और विक्षोभों ने इस काव्य सृजन की अनुभूतियों- संवेदनाओं, अनुभव-पुंजों में अभिव्यक्ति पाई है-

"कब तक
घाव कुरेदेंगे ये
कुंठाओं के दिन
बिच्छू जैसे डंक मारते
चिंताओं के दिन
एक मुसीबत हो तो झेलें
सौ-सौ विपदाएं
लेती है जो
सहनशक्ति की
अग्नि परीक्षाएँ।" (2)

किसी कालखंड विशेष में सर्जनरत लेखक किन चिंताओं और समस्याओं से और क्यों दो-चार हो रहे हैं? यूँ तो हर कालखंड में यह स्थिति देखी जा सकती है। परंतु यदि किसी कालखंड में विद्रूपताओं, विसंगतियों का प्राबल्य हो जाए, राष्ट्र राजनीतिक तथा समाज आर्थिक संकट में हो, बृहत्तर जन समुदाय जब कि कर्तव्य विमूढ़ता और दिशाहीनता की मनः स्थिति में पहुँचकर शासक वर्ग और साधन संपन्न शक्तिशाली वर्गों के इस्तेमाल की वस्तु बन जाए ,बेहया और वीभत्स राजनीति अधिकांश लोगों के आकर्षण का विषय बन जाए। जब चारों ओर निराशाओं का अंधेरा और कुहासा गहरा जाता है तो ऐसे भीषण समय में सजग लेखक इस यथार्थ से रूबरू होता हुआ इसमें हस्तक्षेप का निश्चय करें तो ही कहा जा सकता है कि लेखक ने अपने लेखकीय धर्म का सम्यक निर्वाह किया है।

विजय बागरी जी विजय का काव्य युग सचेष्टता का काव्य है। जनतांत्रिक आस्थाओं, मूल्यों, आज़ादी की लड़ाई में अर्जित किए गए आत्मगौरव, लोक कल्याणकारी राज्य के सिद्धांत, जन- सेवा इत्यादि को सिरे से उलटना उन्हें कतई स्वीकार्य नहीं है -

"कब छोड़ेंगे
पिंड कटीली
दुविधाओं के दिन
चिता जला कर ही छोड़ेंगे
छलनाओं के दिन ।"(3)

साहित्यकार जो जीता या भोगता है या अंतरंग स्तर पर जिसे देखता- महसूस करता है, अमूमन वही लिखता है। इसमें आकर्षण और विकर्षण, प्रेम और घृणा, हार और जीत इस कदर अंतर्गुम्फित है कि दिमाग चकरा जाता है, आगे का रास्ता नहीं सूझता।

परंतु विजय बागरी जी इस अंतर्गुम्फित यथार्थ को तो संरक्षित करते ही हैं, आगे के रास्ते का भी संकेत देते चलते हैं -

"छल-छंदों की
राजनीति को

प्रश्रय नहीं मिले ।
सतसंकल्पों
का परिपालन
सबका भला करें ”(4)

विजय बागरी जी के काव्य में वैयक्तिक सुख-दुख की सघनता या अंतरंगता एक महत्वपूर्ण तत्व है। अभिव्यक्ति में पैनापन है। मशीनीकरण से आक्रांत जीवन की खटर-पटर के बीच गिरती दीवारों और घूमती आंधियों के बीच बहुत सा दर्द-गुबार, दबी-कुचली हसरतें ,मचलते ठुमकते अरमानों -सपनों को मानो स्वर मिल गया है। सामाजिक विसंगतियों और युग की विद्रूपताओं की उनके काव्य में सशक्त अभिव्यक्ति हुई है-

“मोती की चाहत में, गहरे सागर को मथना होगा ।
चोटी की चाहत में, छाती पर्वत की दलना होगा ॥
हरगिज़ नहीं सफलता मिलती अजगर सा बैठे बैठे।
रोटी की चाहत में, श्रम के सीकर को बहना होगा ॥
बीज छोटा ही सही पर, वृक्ष बन जाता तो है ।
दीप छोटा ही सही पर, रोशनी देता तो है ॥
एक बदली नीर की शीतल करे तपती धरा ।
फूल छोटा ही सही, आँगन को महकाता तो है॥”(5)

विजय बागरी जी का काव्य उन्हीं समकालीन अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देता है जो जीवन की निर्मम, निर्भय वास्तविकताओं से मन में उभरती है। विषमताओं, विद्रूपताओं को निरस्त करने के लिए निरंतर संघर्षरत रहना सहज नहीं, परंतु अस्तित्व की रक्षा और तलाश के लिए ज़रूरी है, यह मानते हुए बागरी जी ने भावों ,संवेदनाओं, अनुभूतियों, संवेगों को अपनी लेखनी के माध्यम से अभिव्यक्त किया है -

“होनी, अनहोनी भविष्य में जब होंगी तब देखेंगे
उनकी चिंता में अपने कर्त्तव्य नहीं हम भूलेंगे |
गीता का संदेश यही है, कर्म ख़ुदा की नेमत है ॥
बुरे काम का बुरा नतीजा जग की रीत पुरानी है ।
गीता, रामायण, कुरान, संतों की सच्ची वाणी है ॥
नेकनीयत से नेकचलन से दुनिया में सबका हित है॥
अपने लिये सभी जीते हैं, गैरों को भी अपनाओ ।
अपनों का भी ख्याल रहे, पर गैरों को भी महकाओ॥
मालिक का पैग़ाम यही, मालिक की यही इबादत है।
नादानी का तमस मिटाने, ज्ञान प्रदीप जलाना है ।
जहर मिटाने नफ़रत का अब गीत, प्रीत के गाना है॥
बेशक 'विजय' हमारी होगी हर मज़हब का अभिमत है
होनी, अनहोनी भविष्य में जब होंगी तब देखेंगे।।”(6)

इनकी भाव दृष्टि बहुमुखी है ,भाषा में संक्षिप्तीकरण है । इनके नवगीतों और दोहों में दार्शनिकता एवं गंभीर चिंतन के सहज ही दर्शन होते हैं। इनकी रचना में युगबोध तो है ही दिशा बोध भी है जिसमें प्रेम, करुणा, पारदर्शिता का सुंदर परिपाक हुआ है-

“शोहरत की बुलंदी को मेरा वंदन समर्पित ॥
ज़िंदगी भर जो पराई पीर को पीता रहा ।
ऐसे दरिया दिल मसीहा को मेरा वंदन समर्पित ॥
भारती को नाज़ है, सावरमती के संत पर ।
उस महामानव मनीषी को मेरा वंदन समर्पित ॥
वक़्ते गर्दिश में 'विजय' गांधी की आँधी साथ थी।
ऐसी दानिशमंद हस्ती को मेरा वंदन समर्पित”।। (7)

आज के वैज्ञानिक युग में जिनके मन-मस्तिष्क में वैज्ञानिक सोच नहीं है उन्हें आधुनिक नहीं कहा जा सकता। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र वैज्ञानिक दिशा से युक्त होना चाहिए । विज्ञान मानव के हित का साधन है और यदि वह मानव का अहित करता है

तो त्याज्य है । वैज्ञानिक दृष्टिबोध का विवेक-सम्मत उपयोग और सोच आज की दुनिया के लिए आधुनिकतावादी सोच कहीं जा सकती है । परंतु आधुनिकता के नाम पर सर्वत्र पाखंड और मक्कारी का आलम है-

"हमदर्दी का आवरण, अंतस में दुर्भाव ।

दोरंगी फितरत हुई, लुप्त हुए सद्भाव।। मानवता, ईमान की मर्यादा को तोड़ ।

बेईमानी बो रही, दुनिया ताबड़ तोड़"।। (8)

नवगीत के कवि विजय बागरी जी का दृष्टिकोण आधुनिकतावादी है। मानव को जीवन के केंद्र में प्रतिष्ठित करके उसके सुख-दुख, हर्ष-विषाद, जय-पराजय, लाभ -हानि, प्रेम- घृणा, हिंसा-अहिंसा,लूट-खसोट, आतंक- खौफ आदि से डरी मानवता का चित्रण उनके काव्य में हुआ है-

"तूफान में कश्ती फंसी , डूब रही मझधार

ठीक नहीं है आजकल, मौसम के आसार।।

घायल धरती का हृदय ,करता चीख पुकार।"(9)

सर्वधर्म समभाववाले युग की परम आवश्यकता है। राष्ट्र की समूची प्रगति के समक्ष सांप्रदायिक दंगे और तनाव तथा सांप्रदायिक भेदभाव सदैव आशंका और भय का वातावरण बनाए रखते हैं। देश की एकता और अखंडता के समक्ष प्रश्न चिह्न लगाए रहते हैं । विजय बागरी जी सजग युग चेता होने के नाते सांप्रदायिकता के दुष्प्रभावों को अच्छी तरह से समझते हैं। इसलिए वे सर्वधर्म समभाव पर बल देते हुए लिखते हैं -

"कोई मजहब नहीं सिखाता, नफरत का व्यापार करें।

कोई मजहब नहीं सिखाता ,आपस में तकरार करें।।

सर्व धर्म समभाव हमारी सबसे बड़ी विरासत है ।

जियो और जीने दो ,हर मजहब की पाक इबादत है।।" (10)

विजय बागरी जी के गीत/नवगीत न तो पारलौकिक रहस्यों में भटकते हैं और न कल्पना के पंख लगाकर उड़ते हैं। वे इसी लोक की रपटीली राह पर चलते हुए उसकी सच्चाई से टकराते हैं और अपने समय से संवाद करते हैं। उनकी इस टकराहट के कई रूप हैं- कभी वे असंगतियों को ललकारते हैं, कभी वे उनके पीछे काम करनेवाली शक्तियों को फटकारते हैं, कभी उनका सत्य स्वरूप- प्रस्तुत करके जनमानस में हलचल उत्पन्न करते हैं और कभी उनके समाधान की ओर संकेत करते हैं।

वे देश के 'प्रजातंत्र की पीर' से व्यथित हैं। देश की जर्जर हालत पर वे कहते हैं -

"इन बीते वर्षों में कैसे, भारत को आज़ाद लिखूँ ?

सत्ता का उन्माद लिखूँ, या लोकतंत्र लाचार लिखूं।"(11)

विजय बागरी 'विजय' के गीतों में जीवन और जगत की उन सारी विद्रूपताओं और विडम्बनाओं के संश्लिष्ट चित्र हैं, जो मन को उद्वेलित करते हैं। समाज के प्रति सरोकार को कवि/गीतकार 'विजय' ने पूरी ईमानदारी और शिद्दत के साथ उकेरा है।

सन्दर्भ-सूची

1. विजय बागरी' विजय', ज्वालामुखी फटे,मैंने तुमको व्याकुल पाया ,पृष्ठ-113-114; पाथेय प्रकाशन, जबलपुर (म.प्र.), 2015।
2. विजय बागरी 'विजय', रश्मियों के सारथी, पृष्ठ-26; बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2020।
3. वही, पृष्ठ- 27
4. वही, पृष्ठ -124
5. विजय बागरी 'विजय'मैं दरिया सा बहता पानी, पृष्ठ- 45, पाथेय प्रकाशन, जबलपुर (म.प्र.), 2020।
6. वही, पृष्ठ- 44

7. वही, पृष्ठ- 23
8. विजय बागरी 'विजय', प्राची की मुस्कान, पृष्ठ- 71; पाथेय प्रकाशन, जबलपुर (म.प्र.), 2014।
9. वही, पृष्ठ- 27
10. विजय बागरी 'विजय'मैं दरिया सा बहता पानी, पृष्ठ- 40
11. विजय बागरी 'विजय', सजल सप्तक,पृष्ठ-77

◆विस्तार व्याख्याता, हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, भट्टूकलां,
फतेबाद, हरियाणा।

समकालीन हिन्दी कविता - वैश्वीकरण के संदर्भ में

◆ डॉ.अञ्जलि एन

सारांश- वैश्वीकरण और उदारीकरण के फलस्वरूप आजकल मानव शरीर, पानी, शिक्षा एवं स्वास्थ्य तक बाज़ार की वस्तुएँ बन गई हैं। वैश्वीकरण ने हमारे आत्मीय संबन्धों को सबसे अधिक आहत किया है। हिन्दी की समकालीन कविता वैश्वीकरण के विरुद्ध आवाज़ उठा रही है। समकालीन कवि अपनी कविताओं के माध्यम से समाज को बचाने की कोशिश कर रहे हैं।

बीज शब्द- वैश्वीकरण, उदारीकरण, बाज़ारवाद, पूँजी, विश्वगाँव,विज्ञापन।

साहित्य जीवन का अभिन्न अंग है। इसलिए जीवन एवं समाज की तमाम गतिविधियाँ साहित्य पर हावी हो जाती हैं। यह तो वैश्वीकरण, उदारीकरण, बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद का युग है। यह एक ऐसा समय है कि आम आदमी अधिकाधिक समस्याओं से जूझता रहता है। इतना ही नहीं, मानव मूल्यों के टूटन एवं विघटन चिन्ता के विषय बने हुए हैं। जहाँ तक वैश्वीकरण का सवाल है, वह पूरी दुनिया के सामने एक यथार्थ है, जिसने पूरे विश्व में नया परिवेश पैदा किया है जिसके शिकंजे में खासकर तीसरी दुनिया के लोग फँसे हुए हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम' का नारा लगाकर पूँजीवादी देशों ने साम्राज्य विस्तार हेतु बाज़ारवाद को बढ़ावा दिया है। विश्व की संस्कृति को वैश्वीकरण ने काफी बदल डाला।

आज के समय में वैश्वीकरण और बाज़ारवाद ने समाज के हर तबके पर अपना दबदबा इतना मजबूत कर लिया है कि समाज केवल उपभोक्ता बनकर रह गया है।उसका वस्तु और वस्तुओं की प्रवृत्तियों से किसी तरह का सम्बन्ध नहीं के बराबर है, जो कि मनुष्यता के लिए नुकसानदेह है। वैश्वीकरण के दौर में अन्य साहित्यिक विधाओं के समान कविता में भी प्रचुर मात्रा में परिवर्त्तन हुआ। समकालीन कविता यथार्थ परिस्थितियों से जन्मी विचारवान कविता है, जो यथार्थ के धरातल पर आकर अपनी बात कहती है ।

सोवियत संघ के विघटन का विश्वव्यापी प्रभाव पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप संपूर्ण विश्व में भूमंडलीरण, उदारीकरण और निजीकरण की आँधी बहने लगी। मानवीय संबन्धों के स्थान पर बाज़ार का प्रभुत्व बढ़ा । पूँजी सर्वशक्तिमान हो गई जिसके बल पर कुछ भी खरीदा जा सकते हैं । कवि दिनेश जुगरान अपनी कविता के माध्यम से बाज़ार के प्रभाव की ओर संकेत करते हैं कि अब तो मानव की परछाई भी बिकाऊ हो गई है । पंक्तियाँ हैं: -

"जगह-जगह पर
मदारी बैठ दिए गए हैं

जहाँ बिकती है खुद की परछाइयाँ।"[1]

वैश्वीकरण के नाम पर अब साम्राज्यवादी व्यवस्था और उसकी उपभोक्तावादी संस्कृति को सभी पर लादने का प्रयास हो रहा है । इसीके फलस्वरूप गाँवों की मूल पहचान मिटती जा रही है। जो आशाएँ एवं आकांक्षाएँ विश्वग्राम के नारे से पल्लवित हुई थीं, वे टूटकर चूर हो गईं । धीरे-धीरे भेद खुलता गया और समझ में आने लगा कि विश्वग्राम का मोहक महल ग्राम-संवेदना पर नहीं, बाज़ारवाद पर खड़ा है । विश्वगाँव की परिकल्पना में गाँव की मृत्यु अवश्यंभावी है। गाँवों की जान,पहचान, धड़कन सब स्मृति रह जाती हैं। हिन्दी के कवि रामदरश मिश्र ने भारत के गाँवों की इस स्थिति पर चिन्ता प्रकट करते हुए '**विश्वग्राम**'नामक अपनी कविता में लिखते हैं: -

"हाँ विश्व एक हो रहा है लेकिन बाज़ार के रूप में
यहाँ बाज़ार की एकरूपता है
इस गाँव में
तमाम गाँवों को अपनी-अपनी महक नहीं है.....
यहाँ आदमी-आदमी नहीं है महज विक्रेता है
और संवेदनाएँ सामानों में बदल रही है।"[2]

इन्हीं पंक्तियों से स्पष्ट है कि विश्वग्राम का स्वरूप धनिकों के व्यवसायिक स्वार्थों से जुड़ा हुआ है और विश्वग्राम की यह संकल्पना मात्र एक भ्रम है। बाज़ार ने सीमाओं को तोड़कर विश्व स्तर पर जिसे जोड़ने का काम किया है, उसमें जुड़कर भी सब अलग-अलग हैं, क्योंकि अब मानव से मानव दूर होता जा रहा है ।

भूमंडलीकरण के इस दौर में पूरी दुनिया में बहुत तेज़ी से परिवर्त्तन हो रहे हैं। विदेशी कंपनियों के आने से न केवल शहर, बल्कि गाँव का भी रूप बदलता दिखाई दे रहा है । इस पूँजीवादी व्यवस्था ने व्यक्ति को अपनी जड़ों से अलग कर दिया है । अरुण कमल की कविता '**नये इलाके में**' की पंक्तियाँ हैं: -

"इन नये बसते इलाकों में
जहाँ रोज़ बन रहे हैं नये-नये मकान
मैं अकसर रास्ता भूल जाता हूँ
धोखा दे जाते हैं पुराने मिशन
.....
एक ही दिन में पुरानी पड़ जाती है दुनिया।"[3]

संचार-क्रान्ति के इस युग में सांस्कृतिक गतिविधियाँ मास मीडिया के माध्यम से संचालित हो रही हैं । ये माध्यम सूचनाओं, तथ्यों एवं संदेशों के प्रसार केलिए उच्च विकसित तकनीकों का बड़े पैमाने पर प्रयोग कर रहे हैं । मीडिया के वर्चस्व ने हमारी परंपरागत संस्कृति एवं जीवन-मूल्यों पर प्रश्न चिह्न खड़ा कर दिया है । तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जो विकास हुआ है उसीने हमारे जीवन तरीकों को बदल डाला है । जितना तकनीकी क्षेत्र में विकास होता जा रहा है उतना ही मानव संवेदनाओं से दूर होता जा रहा है । वैश्वीकरण के बहाने हमारी उदात्त सांस्कृतिक विविधता की विरासत को खत्म करने की साज़िश है । मंगलेश डबराल की कविता **भूमंडलीकरण** की पंक्तियाँ हैं: -

"बडी तेज़ी से दुनिया बनती जा रही है एक बडा गाँव
लोभ क्रोध ईर्ष्या द्वेष केलिए अब कहीं ओर नहीं जाना पड़ता
मनुष्य के संबन्ध बहुत पत्तले तारों से बांध दिये गये हैं
जो बात-बात में टूट जातेहैं।"[4]

वैश्वीकरण और बाज़ारवाद के संदर्भ में प्रसिद्ध लेखक कमलेश्वर कहते हैं : -"पूरी दुनिया के आर्थिक नक्शे पर देखिए – वे शक्तियाँ जो औद्योगिक क्रान्ति के बाद औपनिवेशिक शक्तियों के रूप में स्थापित हुई थीं, उन्होंने योजनापूर्वक स्वावलंबी,स्वदेशी अर्थ-व्यवस्थाओं का विनाश किया, मात्र अपने उत्पादों को बाज़ार उपलब्ध कराने केलिए। आज विचार के क्षेत्र में भी यही हो रहा है। बाज़ारवादी शक्तियाँ स्थानीय अप-संस्कृतिवादियों को बढ़ावा दे रही हैं।"[5] बाज़ारवाद का रूप तो मकड़जाल के

समान है, मानव जाने-अनजाने उसमें फँस जाते हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ चुपके से प्रवेश करके सामान्य जन को लुभाकर छलती हैं। अब हाइपर मार्केट या बड़े-बड़े शॉपिंग मॉल की संस्कृति है। हम जैसे ग्राहक बहुराष्ट्रीय कंपनियों की चीज़ों के सामने आकर्षित हो जाते हैं। विज्ञापनों के शिकंजे में फँसकर हम प्रोडक्टों के गुलाम बन जाते हैं। मात्र शारीरिक नहीं, मानसिक रूप से भी हम इन पूँजीपतियों या साम्राज्यवादियों के गुलाम बनते जा रहे हैं। बाज़ार में हम किसी वस्तु की आवश्यकता होने पर जाते हैं, किन्तु बाज़ारवाद हमारा पीछा करता है। हमारी आवश्यकता या असुविधा का ध्यान किये बिना वह हमारे घरों में घुस जाता है। आज बाज़ार की आवश्यकताओं के दायरे बढ़ाए गए हैं। विज्ञापनों के ज़रिए बाज़ार का रंगीन माया जाल फैलाया जा रहा है। इसीलिए ज़रूरत न होने पर भी वस्तुएँ ज़रूरी बनती जा रही हैं। ज्ञानेद्रपति की कविता '**आज़ादी उर्फ गुलामी**' बाज़ारवादी समाज के इसी रवैया को चित्रित करनेवाली है।

"आज़ादी का मतलब है बाज़ार की अपनी पसन्द की
चीज़ चुनने की आज़ादी
और आपकी पसन्द वे तय करते हैं.....
उन्होंने केवल कंप्यूटर नहीं बनाए है
आपके दिमाग को भी कंप्यूटर में बदल दिया है
जिसका साँफ्टवेयर वे सप्लाई करते हैं
घर बैठे होमडेलिवरी मुफ्त बिल्कुल मुफ्त।"[6]

वैश्वीकरण के इस ज़माने में मानव को, चाहे वे अमीर हों या गरीब, अपने माया-जाल में फँसाने केलिए पूँजीपतिवर्ग विज्ञापनों का सहारा लेते हैं। बाज़ारों एवं विज्ञापनों में स्त्रियों की तो बड़ी माँग है। मोडलों की दुनिया में आकार सौष्ठववाली तथा अल्पवस्त्रधारी स्त्रियों की माँग ज़्यादा है। दुनिया रूपी बाज़ार में चीज़ें विज्ञापन सुंदरियों द्वारा प्रस्तुत की जाती हैं। ये विज्ञापन सुंदरियाँ महज कंपनियों के हाथ की कठपुतलियाँ हैं जिनका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। लीलाधर जगूडी की कविता '**विज्ञापन सुंदरी**' इस बात को चित्रित करती है।

"कंपनियों की कठपुतलियाँ विज्ञापन सुंदरियाँ
एक अकर्मण्य-सा परिधान बेचती है।
एक अस्वीकार्य-सा वस्त्र स्वीकार्य करवाती है।"[7]

वैश्वीकरण ने भारतीय समाज में जहाँ एक ओर व्यक्तियों के बीच भौतिक दूरी को कम किया है वहीं दूसरी ओर आपसी प्रेम और आत्मीयता के बीच की दूरी को बढ़ा दिया है। इसने मानवीय संवेदनाओं को सबसे अधिक प्रभावित किया है। इसका सबसे बड़ा शिकार हुआ है परिवार जहाँ रिश्तों में दूरी लगातार बढ़ती जा रही है। वर्तमान समय में आदमी एक संवेदनहीन मानव अथवा पत्थर बनता जा रहा है। अरुण कमल की पंक्तियाँ देखिए: -

"पेड़ को पत्थर बनाने में लगा है हज़ार वर्ष
आदमी देखते-देखते बन रहा है पत्थर
ऐसा क्यों आखिर क्यों हो रहा है
ऐसा क्यों हो रहा है।"[8]

नई आर्थिक-संस्कृति में उपभोक्तावादी प्रवृत्ति को निरन्तर प्रश्रय मिला है। भौतिकवादी लिप्सा ने व्यक्ति के मन और सोच को बदल दिया है। अपना ही परिचित-अपरिचित लगने लगा है। हमारे रिश्ते-नाते टूट रहे हैं, रिश्तों की आत्मीयता बाज़ारवाद के कारण खतम हो रही है। लोग मोबाईल फोन द्वारा मैसेज से, वाट्स अप से अपना समाचार देकर और लेकर अपने कर्त्तव्य की पूर्त्ति मानकर बैठ रहे हैं। मानव की इन्हीं प्रवृत्तियों की ओर संकेत करते हुए राजेश जोशी ने लिखा है: -

"कम हो रहा है मिलना जुलना
कम हो रही है लोगों की जान-पहचान
सुख-दुखमें भी पहने की तरह
इकट्ठे नहीं होते लोग
तार से आ जाती है बधाई और शोक संदेश।"[9]

वैश्वीकरण के समय में प्रकृति का भी

बाज़ारीकरण चल रहा है । आज तो प्रकृति द्वारा प्रदत्त अमूल्य पानी भी बिक रहा है । इसी ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कवि अरविन्दाक्षनजी अपनी कविता में लिखते हैं : -

"खबर एकदम अजीब
पेरियार का पानी बिक रहा है
पेरियार हमें सहेजकर बहती है
पेरियार हमारेलिए नदी नहीं
मेरा हृदय काँप उठता है
माँ का पानी भी बेचा जा सकता है।"[10]

विकास के नाम पर आज न जाने कितने पेड़ों को काट दिये जाते हैं जिसके नकारात्मक प्रभाव अनेक प्रकृतिक आपदाओं के रूप में देखने को मिल रहे हैं। कुँवर नारायण की कविता की पंक्तियाँ हैं-

"यहाँ एक पेड़ था, जहाँ एक फाँक है
बिजनी गिरी होगी, ठीक उसके ऊपर
यहाँ एक नीड़ था, जहाँ अब राख है।"[11]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण ने विश्व के राजनीतीक, सामाजिक, वैचारिक, सांस्कृतिक पहलुओं को प्रभावित किया है। पूँजीवादी शक्तियों ने हमारी प्रकृति, परंपरा, संस्कृति, पहचान आदि को नष्ट करके हमारे तमाम जीवन्त मानवीय मूल्यों को निरर्थक स्थापित किया है। उपभोगवादी संस्कृति ने भारतीय समाज-व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया है। भौतिक सुख-सुविधाओं की आकांक्षा सभी को बाज़ार की ओर आकृष्ट करती है। समकालीन कवियों ने वैश्वीकरण, बाज़ारवाद, मीडिया के प्रभाव आदि के संबन्ध में अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति देने की कोशिश की है।

संदर्भ :

1. विचारधारा नए विमर्श और समकालीन कविता, जितेंद्र श्रीवास्तव (संपादक), किताब घर प्रकाशन, 2013, पृ.157
2. समकालीन भारतीय साहित्य-पत्रिका, संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, साहित्य अकादमी,नई दिल्ली, जुलाई-अगस्त 2011,अंक 156
3. नये इलाके में, अरुण कमल, वाणी प्रकाशन,1996 पृ.सं - 13
4. वही, पृ. 28
5. पहल-पत्रिका, संपादक-ज्ञानरंजन कमलेश्वर, सितंबर 2001, पृ:सं: 24
6. संशयात्मा, ज्ञानेद्रपति, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004 पृ:123
7. समकालीन भारतीय साहित्य, साहित्यअकादमी, नई दिल्ली, संपादक- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, जुलाई-अगस्त 2011, *पृ 27*
8. सबूत, अरुण कमल, वाणी प्रकाशन,1989,पृ. 59
9. आधुनिक हिन्दी कविता के विविध आयाम, डॉ.अनिल पाटील और प्रो:सुधाकर (संपादक), 2019, पृ 43
10. विचारधारा, नए विमर्श और समकालीन कविता,जितेंद्र श्रीवास्तव (संपादक), किताबघर प्रकाशन, 2013, पृ.102
11. समकालीन हिन्दी कविता- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी-राजकमल प्रकाशन -2010, पृ.131

◆सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग
एन एस एस कॉलेज , चेर्त्तला,
केरल राज्य।

कैलाश सत्यार्थी की कविताओं की सामाजिकता

◆डॉ.राखी बालगोपाल

शोध सार- कैलाश सत्यार्थी भारत के प्रख्यात कार्यकर्ता हैं, जिन्होंने बच्चों के अधिकार और संरक्षण केलिए आजीवन अपनी ज़िन्दगी को समर्पित किया है। वे 'बचपन बचाओं आन्दोलन' के संस्थापक हैं। यह संस्था बालश्रम के उन्मूलन एवं बच्चों के पुनर्वास के कार्यों में सदा समर्पित है। कैलाश सत्यार्थी हमेशा बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा की लड़ाई में लगे रहे। भारत भर में उन्होंने बालश्रम के विरुद्ध अभियान चलाए। जनता को बच्चों के अधिकार एवं संरक्षण की बातों से जागरूक किया। सन् 2014 में कैलाशजी को नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 'संयुक्त राष्ट्र संघ' एवं 'भारतीय संविधान' में बच्चों के हित एवं सुरक्षा केलिए कई अधिकार प्राप्त किए गए हैं। इन अधिकारों की रक्षा हेतु कानून भी बनाए गए हैं। इतना सब होते हुए भी हमारे समाज में बच्चों के प्रति कई तरह के शोषण एवं अत्याचार हो रहे हैं। कैलाश सत्यार्थी ने व्यावहारिक रूप से जो कुछ बच्चों केलिए किया, उससे कई बदलाव आए। इस कार्य को ज़ारी रखने केलिए वे आगे भी कई कार्यक्रमों की योजनाओं में रतहैं। साथ- साथ अपनी रचनाधार्मिता के माध्यम से भी समाज में बच्चों के प्रति किए जानेवाले अत्याचार और उसके कारणों की विशद चर्चा करते हैं। बच्चों के हित केलिए उनके वैश्विक स्वर ने बहुत प्रभाव डाल पाया है। उनकी प्रकाशित पुस्तकें हैं-Will for children, Words matter, कोविड 19 - सभ्यता का संकट और समाधान, The Book of Compassion, 'चलो हवाओं का रुख मोड़ें आदि। चलो हवाओं का रुख मोड़ें' उनकी कविताओं का संग्रह है। बच्चों के प्रति हमारे मन में सच्ची जागरूकता, अनुभूति, प्यार आदि जगाने के साथ- साथ समाज में निहित चुप्पी, अन्याय, खोखले आदर्श- विचार, आदि के प्रति भी प्रस्तुत कविता संग्रह में संकेत किया गया है।

बीज शब्द : बच्चों का अधिकार, बचपन बचाओ आन्दोलन, चलो हवाओं का रुख मोड़ें, तलाश, बदलाव, आक्रोश, बालश्रम उन्मूलन, मृग मरीचिका, इन्सानियत।

मूल आलेख

'चलो हवाओं का रुख मोड़ें' कविता संग्रह को कैलाश सत्यार्थी ने तीन मुख्य भागों में बाँटा है – तलाश (सन् 2001-2021 तक), बदलाव (सन् 1980-2000) और आक्रोश (सन् 1980 से पहले)। प्रस्तुत कविता संग्रह में सन् 2021 से पीछे की ओर उनकी काव्य यात्रा है, शायद तीसरा भाग 'आक्रोश' अंत में देकर उसे वर्तमान में लाने की अनिवार्यता की ओर संकेत है। प्रस्तुत काव्य संग्रह में कैलाश सत्यार्थी ने विविध सामाजिक विषयों पर अपनी कलम चलायी है। आपातकालीन समय की विचाराभिव्यक्ति, अंधविश्वास के प्रति आक्रोश, छात्र आन्दोलन की अंगार युक्त कविताएँ, बालश्रम विरोधी अभियान गीत, बच्चों के प्रति करुणामय दृष्टिकोण, बाल यौन शोषण एवं ट्राफिकिंग के विरुद्ध आक्रोश, कोरोना के समय की विसंगतियाँ – आशकाएँ, साम्प्रदायिक दंगों के प्रति तीव्र विरोध जैसे परिस्थितिजन्य यथार्थ स्थितियों का उल्लेख किया गया है। "चलो हवाओं का रुख मोड़े" कविता संग्रह में कवि की बात व्यक्त करते हुए कैलाश सत्यार्थी कहते हैं –"मेरे और मेरी कविताओं केलिए कोई राजनीतिक दर्शन या विचार नहीं है, बल्कि ये हमारे व्यक्तित्व का कारक तत्व अथवा आत्मा है।"(चलो हवाओं का रुख मोड़े - कैलाश सत्यार्थी - कवि की बात से।)

आर्टिफिशल इन्टेलिजन्स के ज़माने में जब दुनिया कई तरह से आशंकित है, कैलाश जी द्वारा सन् 2021 में लिखित कविता "मृग मरीचिका" तकनीक के मानवीय होने की अनिवार्यता पर विचार करते हैं –

नयी सदी की नयी सभ्यता
तकनीक की मृग मरीचिका

xx xx xx xx

डेटा से उपजेंगे नये नये शहंशाह
साइबर शहर साम्राज्य बन जायेंगे
चलो अभी मौका है, हाथ से जाने दें
जिन्दा है अगर हम तो ज़िन्दगी हमारी है
मुर्दा मशीनों में कितनी भी ताकत हो
चेतना हमारी, संवेदना हमारी है
दूसरों की पीड़ा महसूसें और दूर करें
हम सबके भीतर की करुणा हमारी है।

(चलो हवाओं का रुख मोडें – कैलाश सत्यार्थी – पृ. सं. 23.)

तकनीक में डूबी दुनिया में मनुष्य और मनुष्यता के महत्व का संकेत देते हुए प्रकृति और धरती के सम्मुख मनुष्य की निस्सारता का बोध भी वे दिलाते हैं। सबसे बड़ा सत्य तो यह धरती और प्रकृति ही है, जिसपर आश्रित होकर मानव जी रहा है। उस अखण्ड सत्य को मनुष्य अपने वैभव की संपन्नता की आड़ में भूल जाता है। 'मैं क्या हूँ' कविता इस तथ्य पर प्रकाश डालती है –

"तुम लकीरें खीचंकर कहते रहो मुझे
भारत या पाकिस्तान
अफ्रीका, अमेरिका या इंग्लिस्तान
लेकिन मैं सिर्फ धरती हूँ – एक धरती
कब तक उलझे रहोगे तुम
अलग अलग नाम देकर
मेरे आकारों और रफ़्तारों को
जो कभी स्थायी नहीं रहते
परन्तु जो मरेगा नहीं कभी
वे सिर्फ मैं हूँ
और वही मैं, तुम हो।"

(मैं क्या हूँ – कैलाश सत्यार्थी, पृ. सं. 19-20)

सामाजिक कार्यकर्ता में विद्यमान सबसे बड़ा गुण निडर होने की बात है। समाज में निहित अन्याय के खिलाफ प्रतिक्रिया करने, इंसाफ लागू करने केलिए निडर होकर संघर्ष करने की ज़रूरत होती है। कैलाश सत्यार्थी ने अगर 85000 से अधिक बच्चों को अवैध व्यापार से निकालकर उन्हें जीने का रास्ता दिखाया है तो वह उनके निडर होने से ही हुई है। यह एक ऐसा आसान काम नहीं, क्योंकि अवैध व्यापार की श्रृंखला बड़ी ताकतवर होती है और उनके खिलाफ डटकर रहना कैलाशजी की मानसिक शक्ति की पहचान है। इस तरह की कई परिस्थितियों से गुज़रने के कारण कैलाशजी न्याय के साथ खड़े रहने की कीमत अच्छी तरह जानते हैं। हमेशा व्यक्ति डर के कारण ही न्याय या सत्य का पक्ष लेने में असमर्थ होता है –

"डर से बनती हैं कैंचियाँ
जो कुतर देती हैं परिन्दों के पंख
डर से बुने जाते हैं जल
जो पानी में आज़ाद मछलियों की बनते हैं मौत
डर से निकलता है धुआँ
जो दिन को रात बना देता है
अन्धी कर देता है हमारी आँखे
और रोक देता है रास्ते
पिंजरे गढ़ता है डर हमारे भीतर और बाहर
कैद करने हमारी आत्मा को
डर और आज़ादी नही चलते साथ – साथ
डरती नहीं है आज़ाद कौमें
और डरी हुई कौमें आज़ाद नहीं होती।"

(डर – कैलाश सत्यार्थी, पृ. 45)

राजनीति और समाज में अक्सर नेता बनने की होड़ लगी रहती है। कई ऐसे हैं जो नेतागिरी एक धंधे या पेशे के रूप में लेते हैं। असल में नेता अधिकारमोहरिक्त समाजोन्मुख लक्ष्यबोध से युक्त व्यक्ति होता है। समय की माँग के अनुसार ऐसे

लोग नेतृत्व करने आते हैं जहाँ वे अपने को समर्पित कर दते हैं। लेकिन कई ऐसे भी होते हैं जो अपने विकास का लक्ष्य लेकर अधिकार की मंजिलें चढ़ते हैं। इसपर चिंतित करते हुए कैलाश जी ने आपातकाल के बाद जनता पार्टी की सरकार बनने पर युवाओं और छात्रों में राजनीतिक तथा सरकारी पद हासिल करने की आपाधापी पर एक कविता लिखी जिसकी कुछ पंक्तियाँ ऐसी हैं –

"मेरी जिद थी सिर्फ ड्राइवर बनने की
पटरी, रेल या यात्री में से कुछ भी नहीं
ड्राइवर के बिना सब बेकार है
ताकतवार वही होता है सबसे ज्यादा
सालों लग गए इतना समझने में कि
ड्राइवर का कोई अस्तित्व नहीं होता
बाकियों के बिना
अब सोच लिया है धरती बनूँगी
और आकाश भी
समय बनूँगी और रफ़्तार भी।"

(बनूँगा समय भी और रफ़्तार भी - कैलाश सत्यार्थी, पृ. 117.)

बालश्रम उन्मूलन ही कैलाश जी का जीवन-व्रत था। साथ ही उन्होंने बाल अधिकार एवं बाल शिक्षा को हमेशा प्राथमिकता देते हुए उसके लिए कई कदम उठाए। कैलाशजी व्यक्त करते हैं कि बालश्रम और बच्चों के अवैध व्यापार का मुख्य कारण गरीबी ही है। अपनी पुस्तक Every Child Matters में कैलाश जी ने इसका विस्तृत विवरण दिया है। अध्ययन एवं बचपन बचाओ आन्दोलन के कर्मक्षेत्र में निरंतर लगे रहने के कारण उसके सभी पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है –"When poor families earn enough to feed themselves they become less vulnerable to criminal gangs. When incomes of poor families improve, their children go to school, their Chances of being trafficked and sold into slavery diminishes dramatically." (Every Child Matters – Kailash Satyarthi, p. 48).

- इस दुस्थिति की ओर कैलाश सत्यार्थी ने सरकार का ध्यान खींचा और उनके अथक परिश्रम से समाज के सेवा-कार्य में तत्पर लोग कैलाश जी के साथ जुड़े। सबसे मिलकर बच्चों की प्रगति और विकास के कई मोर्चे निकाले। कविता पुस्तक में इसका जिक्र ऐसा दिया है –

"मज़दूरी बच्चे करें क्यों
क्यों पिता को नही रोज़गार
घुट रहा है बचपना, लूट रहा है बचपना
गरीबी के नाम पर गिरवी है बचपना
चाहिए था जिनको सिर्फ प्यार
आज होगा इसका फैसला
मुक्ति केलिए उठो, न्याय केलिए उठो"

(मुक्ति केलिए उठो – कैलाश सत्यार्थी, पृ. 85)

'बचपन बचाओ आन्दोलन' के रूप में उनकी संस्था उन बच्चों की मदद करते हैं जो अपने परिवार के कर्ज उतारने केलिए बेच दिए जाते हैं। उनकी रक्षा करके बाद में उन बच्चों को ट्रेनिंग दिया जाना है ज़िससे वे अपने समुदाय में जाकर ऐसी घटनाओं की रोकथाम केलिए काम करें। समाज में फैली कुरीतियों और अन्यायों के खिलाफ लड़ने के लिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति को इन सबकी धारणा बनी रहनी चाहिए, ताकि वे अन्याय होने पर उसकी रोकथाम की प्रवृत्तियों में लग जाएँ। ऐसा एक मनोविकार भारतीयों में स्वतंत्रता-संग्राम के समय पर जमकर था, लेकिन बाद में यह कम होता गया और आज दुर्लभ है। यह मनुष्य के मरने की

स्थिति के समान है –

"इन्सानियत मरती है तभी जन्मती है भीड़
उसके ज़िन्दा रहने पर तो समाज बनता है।"

(मरेगा नही अभिमन्यु इस बार - कैलाश सत्यार्थी, पृ. 29)

कैलाशजी ने कविता में ही नही, बल्कि अपनी ज़िन्दगी से भी यह साबित कर दिया कि समाज की गढ़न में मनुष्य और उसकी इन्सानियत कितनी ज़रूरी है। इसी कविता की अंतिम पंक्तियों में वे यह भी सूचित करते हैं कि कैसे सच्ची इन्सानियत बचपन से ही बच्चों में गढ़ा जा सकता है–

"क्योंकि सबसे अलग थे मेरे पिता
मा के पेट में उन्होंने मुझे
हिन्दू या मुसलमान नहीं
सिर्फ और सिर्फ इन्सान बनाया है।"

(मरेगा नहीं अभिमन्यु इस बार - कैलाश सत्यार्थी, पृ. 31.)

बच्चों पर हो रहे शोषण एवं अत्याचार का पर्दाफाश करने के साथ ऐसी कुरीतियों के खिलाफ जनता को जागृत होने का आह्वान भी वे करते हैं।

"जब भोर की अनछुई पहली किरण को
अंधेरे के राक्षस निगलने खड़े हो
और कुत्ते चबा रहे हो तोतली जुबान को
तब शर्मिन्दगी में सिर झुकाना काफी नहीं है
काफी नहीं है सहानुभूति के शब्दों की लफ्फाजी
खबरें पढ़ना, देखना और भूल जाना, काफी नहीं है

xx xx xx xx

खोलो आँखों पर बंदी पट्टियों
तोड़ो मुँह पर लगे ताले, खुद पर यकीन करो।
इतनी ताकत ज़रूर है तुमारे हाथों में किं
ठीक से चला सके कलम, सेलफोन, कम्प्यूटर
और इंटरनेट।"

(शर्मिन्दगी में सिर झुकाना काफी नही है – कैलाश सत्यार्थी, पृ. 56, 57.)

कैलाशजी की कविताएँ समय के सत्य के साथ चलती हैं। कर्मशील व्यक्ति कैलाश सत्यार्थी अपने कर्म के माध्यम से जनता तक पहुँचे। बच्चों केलिए उनका लिखना स्वाभाविक है और लेखन में उन्होंने अपना दर्ज जमा दिया। कैलाश सत्यार्थी की काव्य-चेतना पर लीलाधर जगूड़ी का कहना है कि इंजीनियर जब कविता में आता है तो खुशी इस बात की होती है कि वो कविता की सीखी हुई परंपरागत भाषा का इस्तेमाल नहीं करता। नई भाषा ईज़ाद करता है- (https://www.amarujala.com) समय और रफ़्तार बनकर कैलाश जी ने मासूम बच्चों की ज़िन्दगी को नयी राह दी और उन राहों पर चलते उन्हें जो अनुभव मिले उसे उन्होंने कलमबुद्ध किया। उनकी कविताएँ शीर्षक की तरह ही पाठकों को हवाओं का रुख मोड़ने में प्रेरणादायक ऊर्जा देती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

चलो हवाओं का रुख मोड़ें - कैलाश सत्यार्थी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2022.

Every Child Matters – Kailash Satyarthi, Prabhath Prakasan, New Delhi, 2022.

https://www.amarujala.com.

◆असिस्टेंट प्रोफ़ेसोर,
हिन्दी विभाग,
सरकारी वनिता कॉलेज,
तिरुवनंतपुरम,केरल राज्य।

श्रीकांतवर्मा की कविताओं में अपने परिवेश के प्रति आस्था एवं संवेदना

•विकास कुमार यादव

शोध सार - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य परिदृश्य में श्रीकांत वर्मा का अपने समकालीन कवियों के बीच में एक विशिष्ट स्थान है। यांत्रिक दुरूह जीवन का अनुभव, मुक्ति की बेचैनी, आधुनिक भावबोध, विडंबनाबोध, अस्तित्वहीनता, आत्मसंघर्ष और इन सबके बीच जीवन जीने की छटपटाहट का स्वर उनकी कविताओं में भले प्रकार से मुखरित हुआ है। कविता संवेदना और संघर्ष के अन्तर्विरोध से ही आकार ग्रहण करती है, मानवीय अनुभूति के गहरे स्रोतों और प्रश्नों से जूझे बिना कोई भी कविता सार्थकता नहीं पा सकती। कोई भी कवि या रचनाकार अपने परिवेश के प्रति संवेदनापरक भाव लेकर ही रचनाप्रक्रिया में परिणत होता है। वह अपने आसपास की हलचलों से प्रभावित होता है तथा समय एवं समाज की विसंगतियों से रूबरू होकर धीरे-धीरे अपने आंतरिक और बाह्य जगत के अनुभवों को साहस भरे शब्दों में अपनी कूची से उकेरता है। श्रीकांत वर्मा को हिन्दी साहित्य के कविता जगत में एक अप्रसन्न, बेचैन व नाराज़ कवि के तौर पर जाना जाता रहा। लेकिन उनकी शुरुआती दौर की कविताओं (सन 1955 से 1959 तक) में जब वे कविता के लिए ज़मीन तलाश रहे थे, तब उनमें अपनी प्रकृति और अपने परिवेश के प्रति आस्था तथा मानवीयता का स्वर भी गुंजायमान रहा। प्रस्तुत शोधालेख उनकी इन्हीं कविताओं में अपने परिवेश के प्रति आस्था एवं संवेदना के स्वरों की तलाश है, उनका आत्मविस्तार है।

बीज शब्द - आधुनिक भावबोध, मानवीयता, जिजीविषा, आत्मगौरव, आस्था, विश्वास, उद्दाम आशा।

विषय वस्तु - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के दृश्य पटल पर नई कविता के प्रादुर्भाव के उपरांत साठोत्तरी हिन्दी कविता आंदोलनों का उत्तरोत्तर उदित होना चिह्नित करनेवाली बात रही है, जिनमें रचित कविताओं में सामाजिक ऊहापोह एवं तात्कालिक भावदशाएँ दृष्टिगोचर हैं। कमोबेश यही वजह रही है कि स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के स्वरों में विविधता विद्यमान है, जिसमें मानव जीवन की भागदौड़, नगरबोध के परिणामस्वरूप कुंठा, संत्रास, अन्तर्द्वन्द्व, गहरी खीझ आदि का चित्रण मिलता है। प्रकृति के विविध खेल हैं तो उसके समुचित दोहन की चिंता, अपने परिवेश के प्रति आस्था, नैसर्गिक सौन्दर्य से अनुरक्त होने, उसे प्राप्त कर लेने की चाह आदि हैं। भारत देश की आज़ादी के उपरांत दिनों दिन आधुनिकता के पाश में जकड़े जा रहे आम आदमी के अस्तित्व, उसके दैनंदिन संघर्ष तथा इन सबके बीच अपनी मनः शांति व स्वयं को फिर से प्राप्त कर लेने की ललक से युक्त विश्वास का स्वर ध्वनित है।

हिन्दी साहित्य जगत में नई कविता के विरले कवियों में शुमार श्रीकांत वर्मा ऐसे कवि हुए जिनका समूचा जीवन संघर्ष, संताप एवं

जोखिमों से भरा हुआ था, जिनकी उनके कवित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका रही। वे हारते हैं, निराश होते हैं लेकिन संघर्ष करना कभी नहीं छोड़ते। संघर्ष की यही आस्था ही उनकी सबसे बड़ी पूँजी थी, जिसे वे आजीवन संचित रख सके। वे अपने बारे में बेबाक होकर कहते हैं, " मैंने बिना कुछ सोचे-समझे, परिणाम की चिंता किये बगैर, एक ऐसे संघर्ष में कूद पड़ा जिसका अंत अब तक नहीं हो सका है।"1 श्रीकांत वर्मा में संघर्ष की ऊष्मा बराबर मौजूद रही और यही वजह रही जिससे कि उनमें घनघोर निराशा के दौर में भी उद्दाम आशा की झलक मिलती है। उनके कविकर्म में संघर्ष से उपजा द्वंद्व और तनाव सबसे ज़्यादा है, जिसे वह अपनी उत्कट निजता और सामाजिकता दोनों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। श्रीकांत वर्मा के बहुचर्चित कविता संग्रहों- 'भटका मेघ' तथा 'शुरुआती दौर' (सन 1955 से 1959 तक) – में संकलित कविताओं में उनकी आस्था एवं संवेदनापरक भावों की सृष्टि हुई है-

"भटक गया हूँ/ मैं आषाढ़ का पहला बादल/ श्वेत फूल-सी अलका की/ मैं पंखुरियाँ तक छू न सका हूँ/ किसी शाप से शप्त हुआ/ दिग्भ्रमित हुआ हूँ/ शताब्दियों के अंतराल में घुमड़ रहा हूँ, घूम रहा हूँ/ कालिदास ! मैं भटक गया हूँ "2 'भटका मेघ' कविता में 'आषाढ़ के पहले बादल' का भटकना कवि के मन का भटकना है जिसका लक्ष्य तो अलकापुरी जैसी अप्रतिम सुंदर नगरी में जाकर बरसना था। लेकिन इसी बीच दिग्भ्रमित होने से ही वास्तव में उसे यथास्थिति का भान हुआ है। वह जैसे-जैसे उमड़ रहा है सबकुछ भूलकर धरती की प्यास हरना चाहता है। सूखे पेड़-पौधों और अँकुरों की मौन, दारुण पुकार सुनना चाहता है। वह धरती और मनुष्य के साथ अपना रिश्ता नहीं तोड़ना चाहता है। उसका मूल कर्म तो बारिश करना है, उस जगह पर जहाँ वास्तव में उसकी ज़रुरत है। अपने इसी दायित्वबोध को भले प्रकार से न निभा पाने की वजह से वह बेचैन हो गया है और मुखरित है।

"मुझे क्षमा करना कवि मेरे/ तब से अब तक भटक रहा हूँ/ अब तक वैसे हाथ जुड़े हैं/ अब तक सूखे पेड़ खड़े हैं/ अब तक उजड़ी हैं खपरैलें/ अब तक प्यासे खेत पड़े हैं/ मैली-मैली संध्या में/ झरते पलाश के पत्तों से/ धरती के सपने उजड़ रहे हैं/ मैं बादल, मेरे अन्दर कितने ही बादल घुमड़ रहे हैं।"3 इस तरह कवि अपने दायित्वबोध, अपने भीतर के अन्तर्द्वन्द्व और असीम अकुलाहट को बादल के माध्यम से व्यक्त कर धरती और मनुष्य के बीच के लगाव को व्यंजित कर रहा है। निश्चय ही एक रचनाकार अपने वातावरण के प्रति गहन सूक्ष्म दृष्टि का सृजन करनेवाला होता है। वह विषम परिस्थितियों को सामने लाने का प्रश्न और उनके हल निकालने का रास्ता दिखाता हुआ प्रतीत होता है। 'नई कविता' के लौकिक सत्य और बौद्धिकता से सम्बंधित होती है तो, "उसका अर्थ इतना ही है कि वस्तु चित्रण में तथा शैली के सम्बन्ध में नवीन वैज्ञानिक तथ्यों को स्थान देना और काव्य को युगीन स्थितियों, प्रश्नों और चेतनाओं के अधिक से अधिक समीप पहुँचना है।"4 जैसे कि अग्रिम पंक्तियों में व्यक्त हुआ है - "जिस पृथ्वी से जन्मा/ उसे भुला दूँ/ यह कैसे संभव है ?/ पानी की जड़ है पृथ्वी में

बादल तो केवल पल्लव है।"[5]

इन पंक्तियों में जिस दारुण द्वन्द्व में पड़कर, आहत होकर मेघ संकल्पित होता है तो वह स्वयं कविमन के निजी संकल्प को अभिव्यक्त करता है कि अपने कर्तव्य पथ से विमुख न होते हुए निष्काम भाव से निःस्वार्थ जनसेवा में परिणत होना है। इस तरह की चेतना में लीन होकर जीवन यात्रा को पूरा करना है, उसे सफल बनाना है। कवि के अंतर्मन का यही मूल 'बूढ़ा पुल' कविता के माध्यम से व्यक्त हुआ है, जिसमें वह जड़ता को तोड़कर आगे बढ़ना चाहता है- "आह ! मुझे ढहा दो/ मैं हूँ इस नदिया का बूढ़ा पुल/ कब तक अपनी जड़ता बोहूँ/ मुझको अपनी यात्रा में परिणत कर दो।"[6] 'भटका मेघ' संग्रह एवं 'शुरुआती दौर' की संकलित कविताओं में कवि ने आस्था की गुहार लगाई है और उसे महत्व दिया है, जिनमें 'आस्था', 'आस्था की प्रतिध्वनियाँ', 'स्वरों का समर्पण' आदि विशेष तौर पर दृष्टव्य हैं। "आस्था का मतलब हमेशा समर्पण नहीं होता। इस संग्रह की कविताओं में आत्मगौरव और परिवर्तन की छटपटाहट देखी जा सकती है। वह परम्परा को स्वीकार भी करता है और उसे तोड़ने का भी आग्रह करता है।"[7] 'मरुस्थल का एकलव्य' कविता की शुरुआत में कवि अपने अंतर्मन के उजास को मरुभूमि के माध्यम से व्यक्त करता है- "हरित भूमि मैं/ मरुस्थल की छाती पर जलता/ हरित दीप मैं/ शायद कोई बादल मुझको/ एक हरित चुम्बन सा/ मरू की अग्नि अधर पर छोड़ गया है/ मेघ पुत्र मैं/ हरित दीप मैं/ मरू की तप्त दुपहर में जलता/ उगल रहा हूँ मैं हरियाली"[8] स्पष्ट तौर पर आशय है, कि अत्यधिक गर्म और शुष्क मरुभूमि में हरियाली की एक छटा का जो बिम्ब है, वह सहज ही मन को छू जानेवाला और उत्साह से भरकर घनी विषमताओं के बीच में भी उद्दाम आशा का संचार करनेवाला है। तात्पर्य यह है कि आशा के सहारे अपनी हिम्मत एवं धैर्य के साथ निरंतर आगे बढ़ते रहने की जिजीविषा को बनाये रखना चाहिए, ठीक उसी तरह जैसे मरुभूमि की हरियाली घोर तपन के बीच भी शीतल है।

"मेघ तुम्हारा एकलव्य मैं/ साक्षी है हर एक करता/ मैंने थकी हुई यात्रा की/ छाती में साहस बोया है/ हर यात्री के सूने मन में/ मेरा ही सपना सोया है/ मेघ तुम्हारी शपथ, कभी/ कर्तव्यच्युत मैं नहीं हुआ हूँ"[9]-कवि खुद को एकलव्य, मेघपुत्र कहता है और बादल के निःस्वार्थ कर्म से प्रेरणा लेता है, उसे आदर्श मानता है। चूँकि बादल से ही उसकी उत्पत्ति हुई और उसकी उत्पत्ति यूँ ही अकारण नहीं है, अपितु उसे तेज धूल भरी हवाओं, अंधड़ों के बीच किसी भटके हुए राहगीर को शीतलता प्रदान करना है। जनकल्याण की अपनी इस मुकम्मल आस्था पर उसे गर्व है। वह मेघ की शपथ खाकर मानवीयता के भाव को साक्षी करता है कि अपनी उपस्थिति से, वह अपने कर्म से, कभी च्युत नहीं हुआ है और न ही कभी होना चाहता है, बल्कि उसने थके-हारे यात्रियों को शरण दी है। अपनी बावड़ी के जल से उनकी प्यास बुझाकर, उनकी थकान दूरकर, उनमें उत्साह भरकर फिर से जीवनयात्रा में परिणत होने का साहस दिया है। तभी तो वह कह उठता है -

"ओ मरू के एकांकी यात्री /जब-जब अंधड़ तुम्हें टंकेगा/ मैं अपना आलोक हरा-सा/ दूर-दूर तक फैलाऊँगा/ मैं तुमको आवाज़ें दूँगा/ मैं सदियों तक चिल्लाऊँगा/ भटक न जाये कोई यात्री/ झुलस न जाये कोई छाया।"[10] इन पंक्तियों में कवि के जनकल्याण का मूल भाव उद्धृत होता

है, कि मरुस्थल का वह लघु क्षेत्र, सदियों तक इसी तरह पुकार करना चाहता है। उन यात्रियों को, जो आशारहित होकर, व्याकुल-क्षीण होकर मरुस्थल के विषम ताप को झेल रहे हैं, वह उनकी भटक को, उनके झुलसाव को हर लेने को प्रतिबद्ध है। निश्चय ही कवि ने 'मरुस्थल का एकलव्य' कविता में जिस तरह का मानवीकरण किया है, वह अप्रतिम है, जो उसके अपने मानवीय मूल्यों को कभी न छोड़ने और अनवरत कर्मक्षेत्र में लगे रहते हुए, उसके पूरित होने की बात का द्योतक है। 'राष्ट्रवाणी' के नवबंर 1956 अंक में प्रकाशित 'सावन साँझ' कविता श्रीकांत वर्मा का प्रकृति के प्रति रागात्मक भाव व्यक्त करती है जो हृदय को बराबर ही आह्लादित करती है। कवि का आकुल मन ग्राम जीवन और उस परिवेश की सोंधी खुशबू के साथ-साथ उन मनभावन छटाओं को याद करता है तथा वह अपने भीतर की बेचैनी का शमन करने को प्रयासरत दिखाई देता है।

"नदी तीर अमराई में झूले सावन के/ हरियाली में बादल/ जैसे हरित फूल की/ श्याम पंखुड़ियाँ / ××× संझा की परछाईं उड़ती/ उड़ते हैं पेंगो पर आँचल/ झुक-झुक आते मेघ, नदी से/ हरियाली से कजरी बदने।"[11] नदी किनारे आमों के झुरमुट के ऊपर बादलों की छवियाँ श्याम पंखुड़ियों की तरह दिखाई देती हैं। हवाओं के झकोरों से मेघ उड़ रहे हैं झुक रहे हैं। जान पड़ता है कि साँझ की परछाईं बन उस सुरम्य प्रदेश में प्रकृति अपना आँचल हिला रही है।

"हरी हुई है सुधि, भर/ आई है डबडब/ घिर आज अँखड़ियाँ/ कृष्ण-रेख बन चू न जायें बादल अंजन के ××× चुप हैं अमराई के बादल/ नदी तीर से अकस्मात, किसने/ संझा का गीत उठाया/ कच्ची कच्ची मेड़ों/तिरती जायें/ दर्द की भीगी कड़ियाँ "[12] भाव है कि कवि को किसी की याद आ रही है, जिससे उसकी आँखों की कोरें नम पड़ गए हैं। लेकिन इतना कुछ महसूसने के साथ कवि को क्षोभ होता है। क्योंकि आज स्थिति बदल गई है। आज न वे पगडंडियाँ हैं, न वंशी के सुर हैं, न ही वे खेत हैं। इसलिये आज अमराई के बादल चुप हैं। नदी तीर में सन्नाटा है कि अब इस सन्नाटे में शाम का गीत कौन गायेगा। लेकिन कवि आशावादी है वह कहता है कि जब दर्द की तहें टूटेंगी तो फिर से प्रदेश हरित होगा और सावन के झूले नज़र आयेंगे। अपनी इसी उद्दाम आशा के माध्यम से कवि अपनी संवेदना के 'स्वरों का समर्पण' करता दिखाई पड़ता है -

"डब डब अँधेरे में, समय की नदी में/ अपने-अपने दिये सिरा दो/ शायद कोई दिया क्षितिज तक जा/ सूरज बन जाए !"[13] घोर अंधकार भरी निराशा के क्षणों में भी अपनी आशा और विश्वास को हमेशा बनाये रखना है। समय तो एक नदी की तरह है। इसका हर एक क्षण बह रहा है अनवरत! तो क्यों न हम अपनी आशा का एक छोटा सा दीया समय की नदी में सिरा दें। हो सकता है कि क्षितिज तक जाकर वह सूरज बन जाये और उम्मीद की रोशनी बन चमक उठे। समययात्री के मन की व्यथा की भाव व्यंजना यही है कि हर विक्षोभ दमित हो जायेगा। उसकी आशाएँ बनी रहेंगी। कवि को अपनी संवेदना, अपने भाव संपूरित करने के प्रतीक इसी प्रकृति से प्राप्त हुए हैं। तभी तो वह अंधेरे में कुछ बजने की ध्वनि को पीपल समझता है। नदी तीर में सोये हुए व्यक्ति की यात्रा को 'जीवन यात्रा' का नाम देता है। रात भर दीपक के जलने, रतजगे का भाव उससे 'निष्ठा' कहलवाता है। श्रीकांत वर्मा जी मूलतः छत्तीसगढ़ के विलासपुर के रहनेवाले

थे। वहाँ उनका बचपन प्रकृति के संग रहते हुए अपने ग्राम-परिवेश में बीता। समय बीतने पर बहुत जल्द ही वेज़िम्मेदार बन गए। घर-परिवार को सँभालने का ज़िम्मा उन्हें दिल्ली जैसे महानगर में ले आया। वहाँ के नगरीय बोध से उनका मन बेचैन हो उठता है और उस बेचैनी को दूर करने तथा स्वयं के अस्तित्व को मज़बूत करने के लिये वे आस्था का सहारा लेते हैं। असल में नगरीय जीवन की यांत्रिकता में आम आदमी पिसकर रह जाता है। एक तरफ उसे अपनी रोज़ी-रोटी के लिए काम की तलाश है और दूसरी तरफ आगे बढ़ निकलने की होड़ ! इन सबके बीच आदमी का जो कुछ अपना बचता है, वह है उसका अपनी ज़मीन के प्रति जुड़ाव, अपने ग्राम परिवेश की शांति, वह एकांत सुरम्य वादियाँ जहाँ वह पला बढ़ा। यही कारण है कि उनकी कविताओं में जहाँ एक तरफ विडम्बनाबोध, नगरबोध, अप्रसन्नता, नाराज़गी की छाप मिलती है तो वहीं दूसरी तरफ उनमें अपने परिवेश के प्रति आस्था, विश्वास एवं संवेदना का स्वर भी गुंजायमान है।

निष्कर्ष तौर पर आज के समय को दृष्टिगत रखते हुए, हम कह सकते हैं कि 'आंतरिक' और 'बाह्य' के सम्मिलन, इससे उत्पन्न द्वंद्व, आदि आधुनिक जीवन के अनिवार्य पहलू हैं। कवि अपने समय को जिस रूप में देखता है, अनुभव करता है उसे वैसी ही अभिव्यक्ति देने का प्रयास करता है। फिर चाहे किसी दूर अजनबी शहर में उसके अपने गाँव की याद हो या आधुनिकता के उत्पाद के रूप में शहरी जीवन के ऊहापोह, बेचैनी, अजनबीयत हो। लेकिन वह आस्थावान भी होता है अपनी उम्मीदों को लेकर, अपने लक्ष्य को लेकर, अपने घर, परिवार, देश और समाज के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियों को लेकर। उसकी अपनी जीवनयात्रा जहाँ से शुरू हुई उस परिवेश के लिए उसका रागात्मक संबंध उसे जीवटता प्रदान करता है।

संदर्भ

1) अरविन्द त्रिपाठी (संपादक), श्रीकांत वर्मा रचनावली;लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2014, पृष्ठ 12

2) वही ,, पृष्ठ 54, 'भटका मेघ' कविता

3) वही ,, पृष्ठ 55,

4) नंददुलारे वाजपेयी, नई कविता;लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2010, पृष्ठ 6

5) अरविन्द त्रिपाठी (संपादक), श्रीकांत वर्मा रचनावली, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2014, पृष्ठ 56

6) वही ,पृष्ठ 102, 'बूढ़ा पुल' कविता

7) विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, समकालीन हिन्दी कविता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2018, पृष्ठ 188

8) अरविन्द त्रिपाठी (संपादक), श्रीकांत वर्मा रचनावली;लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2014, पृष्ठ 57

9) वही ,, पृष्ठ 58, 'मरुस्थल का एकलव्य' कविता

10) वही ,, पृष्ठ 59

11) वही ,, पृष्ठ 59, 'सावन साँझ' कविता

12) वही ,, पृष्ठ 60

13) वही ,, पृष्ठ 72, 'स्वरों का समर्पण' कविता

◆शोधार्थी

हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश,

ईमेल - vikaskumaryadav667@gmail.com

मो. नंबर – 8574253521

'उत्तर प्रियदर्शी' में अभिव्यक्त मूल्यबोध

◆डॉ.पूर्णिमा आर

हिन्दी के प्रयोगवादी कवि अज्ञेय का गीतिनाट्य 'उत्तर-प्रियदर्शी' अशोक के मानसिक परिवर्तन,बुद्ध धर्म की ओर आकर्षण आदि पर आधारित है। इसका रचनाकाल सन् 1967 है। यह गीतिनाट्य सम्राट अशोक के जीवन पर घटित घटना पर आधारित है।जैसा कि नाम से सूचित है इसका कथानक प्रियदर्शी के उत्तरी रूप से संबन्धित है। इतिहास प्रसिद्ध कलिंग युद्ध और उसके उपरान्त राजा की मानसिक दशा में आये परिवर्तन को कवि ने मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत किया है। इसमें आधुनिक समाज में व्याप्त मूल्यहीनता,आत्मघाती प्रवृत्ति और निराशा को वाणी मिली है।

इस गीतिनाट्य का कथानक इस प्रकार है-सम्राट अशोक पूर्वजन्म में बालक थे। पथ की धूल से खेलते वक्त गौतम बुद्ध भिक्षा माँगते हुए उधर से निकले। बालक ने एक मुट्ठी धूल उठाकर उन्हें दे दी। बुद्ध ने धूल ग्रहण कर उसे फिर धरती पर डाला। दान के पुण्य फल के रूप में कालांतर में अशोक जंबू द्वीप का शासक बना। कलिंग राज्य पर आक्रमण करके अशोक विजयी हुआ।

युद्धोपरान्त कथा में विजयी अशोक के अहंकार का चित्रण किया गया है। विजय पर खुशी मनाते समय भी शत्रुओं के प्रेत उन्हें उपद्रव करते हैं। उसे नियंत्रित करने के लिए प्रेतों के यमराज के नरकलोक से प्रेरित सम्राट अशोक ऊँची दीवारों से घिरे एक नरक-निर्माण की योजना बनाता है। इस नरक में प्रेत-शत्रुओं को यंत्रणा देने की योजना भी बनायी गयी। राजा अशोक पाशविकवृत्तिवाले दीर्घकाय घोर नामक व्यक्ति को नरक निर्माता शासक बनाता है। एकांत में राजा उसे आदेश देता है कि यदि वह स्वयं भी नरक की सीमा में आये तो उसे भी अन्य दुष्टों की भाँति कठोर यंत्रणा दी जाए।

एक दिन एक भिक्षु नरक-सीमा में प्रवेश करता है। नरकवासी उसे पकड़कर खौलते कड़ाह में फेंक देते हैं। आग बुझ जाती है,कडाह ठंडा हो जाता है और उसके बीच कोकनद कमल खिल उठते है। इस चमत्कार की सूचना मिलते ही अशोक नरक-सीमा में पहुँचता है।घोर के आदेश से नरकगण राजा पर कराघात करते हैं। राजा घोर की सत्ता पर चुनौती करने लगता है। घोर उसकी प्रतिश्रुति का स्मरण दिलाता है और उचित दण्ड भोगने का आह्वान करता है। घोर के प्रहार से पीड़ित प्रियदर्शी भिक्षु के सामने गिर पड़ता है। भिक्षु के धर्मोपदेश से राजा के मन में करुणा जाग उठती है और वह बंधन मुक्त हो जाता है।

इस गीतिनाट्य में अशोक एक महान राजा के रूप में नहीं, अन्तर्द्वन्द्व से परिपूर्ण एक साधारण आदमी के रूप में प्रस्तुत होते हैं। डॉ.रमेश गौतम का कथन है "आधुनिक संवेदना की जटिलताओँ से उलझा हुआ मनुष्य अपने अहंकार और अन्तर में विद्यमान नरक से उसी प्रकार मुक्ति नहीं पाता, जिसप्रकार सम्राट अशोक अपने अन्दर के नरक को भोगता हुआ भीतरी नरक से प्रयास करने पर भी ऊपर नहीं उठ पाता, क्यों कि वह मात्र ऐतिहासिक पात्र नहीं, आधुनिक मानव का प्रतीक भी है"।[1] अशोक का चरित्रोद्घाटन अद्वितीय है। नाटक के दूसरे चरित्र घोर का चरित्र भी अत्यन्त स्मरणीय है। जब अशोक द्वारा घोर को नरक का अधिकारी बना दिया जाता है,वह अपनी मनस्थिति को उद्घाटित

करता है-

"मैं वज्र

निष्करुण!

अनुल्लंघ मेरे शासन में

दया घृणा!

ममता निष्कासित

मैं महाकाल

मैं सर्वतपी!

धराधीश ने मुझे दिया यह राज्य-प्रतिश्रुत होकर

इस घाटी में उसका शासन"

स् स् स् स्

"प्रियदर्शी भी

परकोटे के पार!

रह परमेश्वर!

फटके इधर कि एक झटक में

मेरा पाश बंधेगा-मेरा शासित होगा"[2]

घोर जैसा अयोग्य व्यक्ति अधिकार-प्राप्ति पर दंभी होकर अधिकार का दुरुपयोग करता है। प्रियदर्शी के नरकपाश में ग्रस्त होने की संभावना मात्र से वह गर्वीला हो जाता है।

'उत्तर प्रियदर्शी' के प्रथम चरण में शासक की क्रूरता और उसके अहंकार की पराकाष्ठा का वर्णन है। कलिंग विजेता दुर्दम, निर्मम, अप्रतिम शासक अशोक ने कलिंग के प्रांगण में शोणित की निर्मर्यादित प्लवन किया।

"उर वज्र

नेत्र अंगारक

युगल मुकुल में करते प्रतिबिंबित

कलिंग लक्ष्मी का घर्षण

रण-प्रांगण में निमर्याद प्लवन"[3]

अशोक के व्यक्तित्व का प्रतिफलन यहाँ किसी भी साम्राज्यवादी शासक में नज़र आता है। अशोक के समान वे भी साम्राज्य प्राप्ति के लिए मासूम जनता के शोणित की निमर्या दित प्लवन करते हैं। उसके पश्चात्त वे किसी तरह की अन्दरूनी बेचैनी से त्रस्त हो जाते हैं। इसी तरह वे अपने अन्तर्मन में नरक का निर्माण करते हैं।

रणक्षेत्र में गिरकर जो आत्माएँ मुक्त हो गयी हैं, वे राजा के मन को बेचैन बनाने लगीं। वे उनके तन में एक तरह की फुरहरी जगा रही थीं। राजा उन्हें नरक पहुँचाकर कठोर सज़ा देना चाहते हैं। प्रियदर्शी का कहना है-

"मैं नहीं सुनूँगा

नहीं सहूँगा

नरक चाहिए,मुझको।

इन्हें यंत्रणा दूँगा मैं,

जो प्रेत-शत्रु ये मेरे तन में

एक फुरहरी जगा रहे हैं,

अपने शोणित की अशरीरी छुअन से

उन्हें नरक

मेरा शासन है अनुल्लंघ्य!

यंत्रणा

नरक चाहिए"[4]

रण में अनेक लोगों की बेमानी मृत्यु देखने पर भी अशोक के मन में पश्चात्ताप नहीं होता है। अशोक की क्रूरता की पराकाष्ठा है कि वे प्रेत आत्माओं को बेकार छोड़ने को तैयार नहीं होते। उनके अनुसार अपने तन में जो फुरहरी है, मन में जो अशान्ति है, उसका दायित्व इन आत्माओं का है। इसलिए उन्हें नरक पहुँचाकर कठिन यंत्रणा देनी है।

कवि बताते हैं - अशोक के राज्य में संध्या की वेला में सुन्दर लालिमा नहीं नज़र आती। इसके बदले यहाँ अवाम के रुधिर की शोणिमा छाई हुई है। राजा देखता है कि चारों दिशाएँ अनुक्षण रुधिर से सिंचित होती रहती हैं और संध्या की स्निग्ध शान्ति को भंग करके तथा मंगल गायन को भंग करके असंख्य स्वरों का चीत्कार उमड़ाया जाता है। इनके कारणों के बारे में सोचकर अशोक का मन निरुत्तर हो जाता है। इतना ही नहीं, नगर के मंदिर कलश,पताका,देवतरु सब रुंडों की सेना के समान अपने ही सिर को रौंदकर आगे बढ़ जाते हैं।

नाटक के दूसरे चरण में अशोक के तनावपूर्ण मन का चित्रण है।अशोक क्रूरतापूर्ण मन से अन्य लोगों को यंत्रणा देने का संकल्प करता है। मन के अन्दर टहराहट होती है। मन दुष्प्रवृत्तियों के कारण पराजित होता है,पुन: उसे करुणा का आश्रय लेना पड़ता है। करुणा की धारा में क्रूर अहंतापूर्ण मन शान्त हो जाता है। करुणा के जागृत होने पर अशोक का कहना है-

"कल्मष-कलंक धूल गया आह!

युद्धान्त यहाँ यात्रन्त हुआ!

खुल गया बंध करुणा फूटी!

आलोक भरा! यह किंकर

मुक्त हुआ! गत शोक!"[5]

अन्तर्मन में करुणा के जागरित होने पर अशोक का अहंकार स्वयं समाप्त हो जाता है। प्रेम और करुणा की राह पर चलने से मनुष्य स्वयं नरक से मुक्त हो जाता है। डॉ.हरीश्चन्द्र वर्मा का कथन है – "यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि किसी परिस्थिति से गुज़रकर ही व्यक्ति उससे ऊँचा उठ सकता है। दर्पस्फीत अहंकारग्रस्त मन नरकीय विकृतियों का कारण बनता है, किन्तु उसे स्वयं ही अपने द्वारा सृष्ट नरक की ज्वाला में जलना पड़ता है तो उसका विकार भस्म हो जाता है और वह निर्मल और निष्कलुष हो जाता है।"[6] इस तरह अशोक के चरित्र का रूपान्तरण दर्शाया गया है।

'उत्तर प्रियदर्शी' में अज्ञेय ने हिंसा और पाशवीयता पर अहिंसा और बुद्ध की करुणा की विजय दर्शायी है। व्यक्ति ही अपने नरक का निर्माण करनेवाला है। अपने मूल्यों और आदर्शों की बलि चढ़ाकर वह हमेशा अपने में नरक-निर्माण में लगा हुआ है। धर्मवीर भारती ने 'अन्धायुग' में बताया है कि मनुष्य के अन्तर्मन में कहीं एक अन्धा गह्वर है, उस अन्धे गह्वर में कहीं न कहीं एक पशु का वास होता है। अज्ञेय के नरक और धर्मवीर भारती के अन्धे गह्वर में कोई फर्क नहीं, दोनों एक ही हैं।

भूमिका में अज्ञेय ने ज़ाहिर किया है कि विजय-लाभ पर पहले अहंकर, फिर अहंकार के ध्वस्त होने पर नये मूल्य का बोध, नई दृष्टि का उन्मेष यही सहज मनोवैज्ञानिक क्रम है। अशोक का मनपरिवर्तन इसी मनोवैज्ञानिक क्रम पर आधारित है। अशोक द्वारा बनवाया गया नरक,वास्तव में उसके अहंग्रस्त मन का प्रतीक है। बौद्ध भिक्षु की उपस्थिति यहाँ करुणा भाव की उपस्थिति है।इनके प्रभाव में आकर अशोक का अहं गल जाता है,नया मूल्यबोध अवतरित होता है।

संदर्भ:

1.सातवें दशक के प्रतीकात्मक नाटक-रमेश गौतम-पृ.81, राजेश प्रकाशन, 1977।

2.उत्तर प्रियदर्शी (वाग्देवी प्रकाशन, बिकानेर, 2002) -अज्ञेय-पृ.46

3.वही-पृ.49

4.वही-पृ.49

5,वही-पृ.21

6.नई कविता के नाट्यकाव्य-डॉ.हरिश्चन्द्र वर्मा-पृ.343; शोध प्रबंध प्रकाशन, 1977।

◆असोसियेट प्रोफेसर

हिन्दी विभाग

सनातनधर्म कॉलेज,

आलप्पुष़ा, केरल राज्य।

आधुनिक हिन्दी कहानियों में महानगरीय जीवन यथार्थ

♦डॉ. सिन्धु जी नायर

शोध सार- स्वतंत्रता के बाद महानगरों में जनसंख्या में बढ़ोतरी हुई है। इस जनसंख्या में बढ़ोत्तरी का कारण है कि बहुत से लोग अपने ग्रामों, कस्बों को छोड़कर आजीविका की तलाश में, बेहतर ज़िन्दगी की आकांक्षा में महानगरों में आकर बस गये है । अपने ग्रामों और कस्बों को छोड़कर महानगरों में पनाह लेनेवाले लोगों में शिक्षित और अशिक्षित दोनों हैं। देश में शिक्षा के प्रसारण से भी इस प्रक्रिया में बढ़ोत्तरी हुई है । थोड़े बहुत पढ़े-लिखे लोग तक महानगरों की तरफ दौड़ते हैं । उन्हें यह आकांक्षा है कि उन्हें बेहतर जीने की सुविधाएँ नगरों में उपलब्ध हो जायेंगी । इसके अलावा रोज़ी-रोटी को कमाने के लिए अशिक्षित या फिर अल्पशिक्षित वर्ग के लोग भी महानगर की ओर चले जाते हैं, क्योंकि वहाँ की औद्योगिक प्रगति उन्हें आकर्षित करती है । कारखानों में काम मिलने से रोटी की समस्या तो हल हो जायेगी, इस उम्मीद से वे महानगरों की पनाह लेने लगते हैं । ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ती चली जाती है, उपनगरों का निर्माण होना प्रारंभ हो जाता है । इसके बाद भी इस बात को नकारा नहीं जा सकता है कि भले ही ये लोग रोज़ी-रोटी के लिए महानगरों की ओर दौड़ पड़े हैं, फिर भी इनकी मानसिक अवस्था इस नये माहौल को अचानक स्वीकार नहीं पाई है। वे भीड़ में रहते हुए भी अकेलापन का अनुभव करने लगते हैं । इसी वजह से नये कहानीकारों की महानगर संबंधी कहानियों में संबंधों के थोथेपन, बेगानेपन और रिक्तता की मनः स्थितियों को उभारा गया है । ये विस्थापित लोग इस नये परिवेश को सहजता से नहीं अपना पा सके हैं।

बीज शब्द- महानगर, अकेलापन, शिक्षित, अल्पशिक्षित, स्वतन्त्रता।

स्वतंत्रता के बाद मानवीय समाज को महानगरों की अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है । आबादी इतनी अधिक बढ़ गयी है कि लोगों के सामने मकान, राशन और यातायात की समस्याएँ विकराल रूप धारण करके खड़ी हो गयी हैं । अपने गाँवों और कस्बों को छोड़कर बेहतर ज़िन्दगी के बारे में काफी सपने संजोये हुए आये व्यक्ति, इन समस्याओं को सामने पाकर मोहभंग की लपेट में आ गये । इस कटु यथार्थ से वाक़िफ़ हो गये हैं कि यहाँ रोटी, कपड़ा और मकान उनकी बहुत बड़ी समस्याएँ हैं । गाँव के सुखमय अतीत का स्मरण उन्हें आने लगता है । गाँव की बड़ी-बड़ी हवेलियों में जो रहते आये हैं, आज एक कमरे में रात गुज़ारने के लिए मज़बूर हैं । दिन में घण्टों उन्हें बस स्टेण्ड में गुज़ारना पड़ता है । राशन पाने के लिए घण्टों लाइन में खड़े रहना पड़ता है । कारखानों में पनाह लेकर ज़िन्दगी को बेहतर बनाने की उम्मीदवाले मज़दूर वर्ग कारखानों में आये दिन राजनैतिक हस्तक्षेप से उत्पन्न हड़तालों का सामना करते-करते परेशान हो चुके हैं। कारखानों से उत्पन्न होनेवाले धुएँ, यातायात के साधनों से उत्पन्न प्रदूषण आदि से महानगरीय जीवन विषाक्त हो चुका है । समाज में फैले भ्रष्टाचार ने मनुष्य को झकझोर दिया है । इस संदर्भ में लिखनेवाले कहानीकारों में मोहन राकेश, कमलेश्वर, शेखर जोशी, मन्नू भण्डारी और कृष्ण बलदेव वैद आदि प्रमुख हैं ।

"दाज्यू" कहानी में शेखर जोशी ने होटल में काम करनेवाले बॉय को प्रस्तुत किया है जो पहाड़ी इलाके से यहाँ काम करने आया है । मदन अल्मोड़ा का रहनेवाला है। चाय पीने आये जगदीश बाबू से जब पता चलता है कि वे भी उसके पास के गाँव के

रहनेवाले हैं तो मदन की खुशी देखकर ऐसा लगता है मानो उसके हाथ से ट्रे नीचे गिर जायेगा । मदन को घर और उसके गाँव की याद आने लगती है "अतीत - गाँव... ऊँची पहाड़ियाँ..... नदी..... ईजा(माँ) ... बाबा... दीदी...भुलि (छोटी बहन).....दाज्यू (बडा भाई)"[1]। दो-चार दिन में ही वह जगदीश बाबू से घुल-मिल जाता है। वह उन्हें "दाज्यू" कहकर पुकारता है। जगदीश बाबू जो अब तक एकाकीपन को झेल रहे हैं, थोड़े दिनों के बाद से शहर से घुल-मिल जाते हैं। अब मदन द्वारा "दाज्यू" बुलाया जाना उन्हें अकड़ने लगता है। एक दिन जगदीश बाबू क्रोध से चिल्ला उठते हैं कि- "यह दाज्यू-दाज्यू क्या चिल्लाते रहते हो, दिन-रात। किसी की "प्रेस्टिज" का ख्याल भी नहीं है तुम्हें? "[2] मदन के मन को ठेस पहुँचता है। वह सिरदर्द का बहाना करके कोठरी बन्द करके रोने लगता है। वह असलियत को स्वीकार करके पूर्ववत् काम करने लगता है। दूसरे दिन जगदीश बाबू के साथ आये सहपाठी हेमन्त द्वारा नाम पूछे जाने पर मदन अपना नाम "बॉय" बताता है। कमलेश्वर की कहानी 'खोई हुई दिशाएँ' में महानगरीय जीवन में पहचान और निजता की तलाश के लिए छटपटाते हुए दुःख-दर्द पर प्रकाश डाला गया है । चन्दर को इस शहर में आये तीन वर्ष हो चुके हैं। कस्बाई संस्कृति और संस्कारों पर उसका व्यक्तित्व विकसित हुआ है। इसी कारण वह हर स्थान पर परिचितों की आँखें ढूँढता है। उसे लगता है कि उसके आसपास से सैकड़ों लोग गुज़रते हैं, परन्तु कोई भी उसे नहीं पहचानता है। चन्दर को यह महसूस होता है कि जिस दिल्ली शहर में आया है यहाँ कृत्रिमता और औपचारिकता के सिवा और कुछ नहीं है । इस कहानी में कस्बे में पला चन्दर दिल्ली के नये परिवेश में आकर एक अजीब तरह के अजनबीपन और बेगानेपन के बीच बुरी तरह फँस चुका है। इस नये परिवेश या माहौल ने चन्दर की पहचान को भी छीन लिया है । चन्दर को इस भीड़ भरी राजधानी में भी नितांत अपरिचितत्व और बेगानापन ही महसूस होते हैं। चन्दर अपनत्व चाहता है। अपनत्व लोगों से, सड़कों से, उन सभी से जिनसे अकसर मिलता है। लेकिन इस भीड़ में भी कोई उसे अपनापन नहीं दे देता है। सब अपने-अपने काम में मशगूल है। सभी की अपनी-अपनी परेशानियाँ हैं । चन्दर यह महसूस करता है कि सड़कों के किनारे घर है, बस्तियाँ भी हैं, परन्तु उसकी विडम्बना है कि वह किसी के घर भी जा नहीं सकता है । अपने घर के सदस्यों से तो अपनत्व की माँग कर सकता है, परन्तु घर जाने के बाद भी यह अकेलापन उसका पीछा नहीं छोड़ता है । शहर में ऐसी अवस्था होती है कि वह घर पहुँचते ही पत्नी से बातें नहीं कर सकता है। उसका घर बहुत छोटा-सा है, अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियों का आना-जाना रहता है। इसका वर्णन लेखक ने इस प्रकार किया है - "वहाँ पहुँचकर भी पहले मेहमान की तरह कुर्सी पर बैठना होगा, क्योंकि बिस्तर पर कमरे का पूरा सामान सजा होगा और वह हीटर पर खाना पका रही होगी । उन्मुक्त होकर वह हवा के झोंके की तरह कमरे में घुस भी नहीं सकता और न उसे बाहों में लेकर प्यार ही कर सकता है, क्योंकि गुप्तजी अभी मिल से लौटे नहीं होंगे और मिसेज़ गुप्ता बेकारी में बैठी गप लड़ा रही होंगी या किसी स्वेटर की बुनाई सील रही होगी। अगर यह चला भी गया तो कमरे में बहुत अदब से धुसेगा। फिर मिसेज़ गुप्ता इधर-उधर को दो-चार बातें करेगा। तब बीबी खाना खाने की बात कहेगी। और खाने की बात सुनकर मिसेज़ गुप्ता घर जाने के लिए उठेगी...।"[3] इस प्रकार की काफी लम्बी प्रक्रिया के बाद ही वह पत्नी को अपने निकट पाता है। निर्मला (पत्नी)के स्पर्श को वह पहचानता है। वह भी उसके स्पर्श को पहचानती होगी । परन्तु निर्मला थककर सो जाती है और चन्दर के बार-बार स्पर्श करने पर भी जब वह नहीं जागती है तब चन्दर को लगने लगता है कि वह उसे नहीं पहचानती है । चन्दर अन्य सभी

दिशाओं को खो चुका है और उसे लगता है कि आज आखिरी दिशा भी उसके हाथ से फिसलती जा रही है। इसी कारण वह निर्मला को गहरी नींद से उठाकर पागल की तरह पूछता है कि क्या निर्मला उसे पहचानती है? इस कहानी में चन्दर दिल्ली में आकर बेगानेपन को झेलता है । इन तीन सालों में उसने इस महानगर को नहीं स्वीकार पाया है।

संबंधों को आवश्यकता आने पर बनाने और ज़रुरत खतम होने पर तोड़ देने का उल्लेख मन्नू भण्डारी की कहानी "मज़बूरी" में मिलता है। इस कहानी में बीमार बूढ़ी माँ प्रमुख पात्र है। बहू (रमा) अपने दूसरे बच्चे के आगमन पर पहले बच्चे को न संभाल पाने के कारण बड़े बेटे को उसकी दादी के पास छोड़ जाती है। दादी की लाड-प्यार से बच्चा बहुत ही ज़िद्दी होता है और बिगड़ जाता है। एक साल बाद जब रमा आई और बड़े बेटे के ज़िद्दी को देखती है तब उसका खून खौल उठता है। वह बेटे को साथ ले जाना चाहती है। अब उसे अपने बेटे के भविष्य की चिन्ता होने लगती है । रमा ने लौटकर अम्मा को लिख दिया कि उसे नर्सरी स्कूल में भर्ती करवा दें। लेकिन दादी को यह बिल्कुल भी नहीं सुहाता है कि चार साल के दूध पीते बच्चे को स्कूल में कैसे डाले? इसी वजह से जब रमा, रामेश्वर और दूसरा बच्चा पप्पू आते हैं तब रमा शिकायत करती है कि - "पर जब उन्हें लिखा कि स्कूल में डाल दो तो वह भी तो उनसे नहीं हुआ। जैसे बताती हूँ वैसे तो रखती नहीं। अब इनके दो दिन के सुख के लिए बच्चे का सारा भविष्य बिगाड़ कर रख दूँ "?[4] वह अम्मा से साफ-साफ कह देती है कि उसे यह बताते हुए दुःख है कि अम्मा ने बच्चे को ज़रूरत से ज़्यादा प्यार देकर बिगाड़ दिया है । बच्चे में तो एक भी आदत अच्छी नहीं वह कहती हैं कि "यदि आप सचमुच ही इसे प्यार करती है और इसका भला चाहती हैं तो इसे मेरे साथ भेज दीजिए, और इसके साथ दुश्मनी ही निभानी है तो रखिए इसे अपने पास।"[5] इस कहानी में लेखिका ने संबंधों में आये परिवर्तन, थोथेपन को दर्शाया है कि जब अम्मा की मदद की ज़रूरत पड़ी तो वही बच्चे को दादी के पास छोड़ जाती है। ज़रूरत खत्म होने पर वह बच्चे के भविष्य के बारे में सोचने लगती है।

महानगर में जीनेवाले लोगों के संबंध में आये थोथेपन का जिक्र मोहन राकेश की कहानी "मवाली" में है। इस कहानी में एक निराश्रित बच्चे पर होनेवाले अत्याचार का चित्रण है। लेखक ने समुद्र के किनारे टहलते हुए एक मवाली लड़के का यथार्थ चित्रण किया है। "वह लड़का नग पाँद, नग सिर, सिर्फ घुटनों तक लम्बी मैली कमीज़ पहने, वहाँ एक सिरे से दूसरे सिरे की तरफ चल रहा था।"[6] उस लड़के की उम्र तेरह या चौदह साल की ही रही है । वह सीपियाँ जमा करके अपने जेब में भरता है। अचानक एक पारसी परिवार ने उसे आवाज़ देकर बुला लेता है। एक व्यक्ति उससे सामान उठा देने को कहता है। स्त्री उससे जूठी प्लेटें और चम्मच इकट्ठा करने को कहती है। लड़का रेत मलकर साफ कर देता है। एक चम्मच कम देखकर वह स्त्री बिगड़ने लगती है। व्यक्ति चम्मच पाने के लिए लड़के को मारने लगता है। उसके जेब से सारी सीपियाँ निकालकर फैंक दी जाती हैं और साथ ही उसकी माँ की यादगार का टिक्का भी दूर फैंक दिया जाता है। टिक्का लौटा देने की बात को कहते-कहते वह व्यक्ति को काट देता है। वह उसे धक्का देकर फिर जूते से ठोकरें मारता है। आसपास के जो लोग इकट्ठा होते हैं, वे भी लड़के को मारते हैं। एक चम्मच के खो जाने पर व्यक्ति हैवानियत करने पर उतारू हो जाता है। वह इतने छोटे से बच्चे को मारता है। जिस पैसे को देने की बात उस व्यक्ति ने कही है जिसकी वजह से बच्चा काम करने के लिए तैयार होता है, पैसा देना तो दूर, उलटा वे मार-मार कर लड़के की हालत बिगाड़ देते हैं।

निष्कर्ष: आधुनिक कहानी की मुख्य संवेदना, उसका केंद्रिय बिंदु, नगरीय या महानगरीय जीवन है। भारत की अधिकांश जनता गाँवों में बसती है

लेकिन नगरीकरण एवं औद्योगिकरण के फलस्वरुप देश में कस्बे नगर में और नगर महानगर में बदलते जा रहे हैं। महानगरों का उन्मुक्त वातावरण, व्यक्तिगत विकास की प्रतिस्पर्धा, अवसरानुकूल प्रतियोगिता आदि महानगरों में रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को आगे बढ़ने के समुचित अवसर प्रदान करते हैं। महानगरीय जीवन के सभी पक्ष इन कहानियों में सक्षम रुप में चित्रित हुए हैं, जो अपने समय की बहुत ही प्रामाणिक तस्वीर प्रस्तुत कर सके हैं। महानगरीय जीवन का कोई भी पक्ष आधुनिक कहानी में चित्रित हुए बिना नहीं रहा है। हिन्दी कहानी में महानगरीय जीवन अपने विभिन्न आयामों में रूपायित हुआ है ।

संदर्भ :

1. दाज्यू, शेखर जोशी, प्रतिनिधि कहानियाँ- पृ.8-9, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994।
2. वही-पृ. 9
3. खोई हुई दिशाएँ कमलेश्वर-एक दुनिया:समानान्तर, पृ.140, राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996।
4. मज़बूरी, मन्नू भण्डारी, मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ. 25, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1993।
5. वही-पृ. 26।
6. मवाली, मोहन राकेश, आठ श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 57, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1987।

◆ असोसिएट प्रोफेसर,
महाराजास कॉलेज (सरकारी स्वायत्त),एरणाकुलम, केरल राज्य।

हिन्दी के नुक्कड़ नाटकों में प्रतिरोध

◆ **डॉ.अनीश के.एन**

सारांश:भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा)ने फाज़िज़्म के उदय और ब्रिटीश नव उपनिवेशद के उत्पीड़न के खिलाफ भारतीय जनता की संघर्षशील चेतना की अभिव्यक्ति के रूप में, बरसों पहले, स्वतंत्रता-संग्राम के पूरे कालखंड में पदार्पण किया था। इप्टा की भूमिका इतनी विशिष्ट रही कि इसने भारत की बहुसंख्य अनपढ़ और गंवार जनता में नई सांस्कृतिक चेतना और सामयिक घटनाओं के प्रति प्रगतिशीलदृष्टि पैदा की; अकाल के समय गली, चौराहे, रेलवे स्टेशन आदि जगहों पर नुक्कड़ नाटक प्रस्तुत किए और बंगाल के अकाल जैसी भयावह त्रासदी के पीछे छिपी साजिश और राजनीतिक दावपेंच से जनता को अवगत कराया ।

बीज–शब्द: नुक्कड़ नाटक, बाज़ारवाद, भूमण्ड़लीकरण, प्रतिरोध की भावना।

मूल आलेख:

नुक्कड़ नाटक परम्परागत रंग मंचीय नाटकों से अलग हैं। यह रंगमंच पर नहीं खेला जाता, जैसा कि इसके नाम से ही प्रतीत होता हैं कि इसका गली मोहल्लों के नुक्कड़ पर प्रदर्शन किया जाता हैं। इसकी रचना किसी एक लेखक द्वारा होती हैं। वर्तमान समय में समाज और देश की समस्याओं को आधार बनाकर उनका मंच नकर के लोगों तक संदेश दिया जाता है। संप्रदायवादी और फाँसीवादी बर्बरता के खिलाफ जिहाद छोड़ने में नुक्कड़ रंगकर्मियों ने जो पहल की है वह बिल्कुल सराहनीय है। नुक्कड़

नाटक अपनी ज़मीन से जुड़कर, जनसाधारण की संस्कृति, रहन-सहन और हावभाव को अपने अंदर समेटकर समाज के अंतर्विरोधों को रचना के केंद्र में रखते हैं। हिंदी नुक्कड़ नाट्य आन्दोलन के ऐतिहासिक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि शोषण और दमन से भरी ज़मीन के इनसानों को संगठित करने एवं हक की लड़ाई लड़ने के लिए प्रेरणा देने में हिंदी नुक्कड़ नाटकों ने अहं भूमिका निभाई है। "नई संभावनाओं से गर्भित नुक्कड़ नाटक एक ऐसा प्रयोग है जो जनसंघर्ष में आम आदमी की पक्षधरता के साथ ऐन्द्रिय संवेदना और सोच को जगाता हुआ एक स्वस्थ परंपरा बनाने की सामर्थ्य से समन्वित है। वांछित सामाजिक परिवर्तन में इस नाट्यविधा की अहम् भूमिका जग ज़ाहिर है।"[1] 'भारतीय जन नाट्य संघ' (इप्टा) ने फाज़िज़्म के उदय और ब्रिटीश नव उपनिवेशद के उत्पीड़न के खिलाफ भारतीय जनता की संघर्षशील चेतना की अभिव्यक्ति के रूप में, बरसों पहले, स्वतंत्रता- संग्राम के पूरे कालखंड़ में पदार्पण किया था। इप्टा की भूमिका इतनी विशिष्ट रही कि इसने भारत की बहुसंख्यक अनपढ़ और गंवार जनता में नई सांस्कृतिक चेतना और सामयिक घटनाओं के प्रति प्रगतिशील दृष्टि पैदा की ; अकाल के समय गली, चौराहे, रेलवे स्टेशन आदि जगहों पर नुक्कड़ नाटक प्रस्तुत किए और बंगाल के अकाल जैसी भयावह त्रासदी के पीछे छिपी साजिश और राजनीतिक दावपेंच से जनता को अवगत कराया। ज़ाहिर है कि इप्टा ने ही नुक्कड़ नाट्य आन्दोलन का बीज बोया और सफदर हाश्मी और उनकी नाट्यसंस्था जननाट्यमंच (जनम) के हाथ में आकर यह आन्दोलन और भी धारदार और प्रभावशाली बना। जननाट्यमंच ने तैंतीस साल की अपनी नाट्ययात्रा तय की है। 'जनम' ने साठ मौलिक नाटकों की रचना की है जिसका 8000 से अधिक प्रदर्शन भारत की विभिन्न जगहों पर हुआ है, विभिन्न भारतीय भाषाओं में इसका अनुवाद भी हुआ है। सफदर हाश्मी को श्रमिकों में छिपी हुई शक्ति पर भरोसा था। "मेरे देश के आवारा बच्चो, मेरी धरती केलालो, मेरे देश के मज़दूरो आओ, एकजुट हो जाओ और पहचान लो कि केवल एक ही रास्ता है – मेहनतकश एकता का रास्ता।"[2] देश की अगुआई करनेवालों का अंत स्वार्थी देश के लिए कितना बड़ा खतरा बनता है, अत: जनता को इस खतरे से हमेशा सावधान रहना है, ऐसी चेतावनी 'जब चोर बने कोतवाल' में गूँजती है।

बाज़ारवादी भूमण्ड़लीकरण के वर्तमान दौर में नुक्क्ड़ नाटकों की प्रासंगिकता और भी बढ़ गई है। ब्रिटीश हुकूमत के ज़माने में साम्राज्यवादी ब्रिटन ने हमारे देश की आर्थिक हालत को किस भयानक ढ़ंग से विकृत और खोखला कर दिया था उससे ज़्यादा खतरनाक ढ़ंग से आज बहुराष्ट्रीय कंपनियों की लपलपाती जीभ हमारी आर्थिक संपदा चाटने को आमदा है। इससे भी ज़्यादा खतरनाक स्थिति यह है कि देश के सत्तावन उपभोक्ता समूह बहुराष्ट्रीयता के सामने नतमस्तक होते हुए दिखाई पड़ते हैं। पहले भारतेंदु ने एक जलते सत्य की ओर तर्जनी उठायी थी कि समस्त नैतिक विवेकवादी मूल्यों को छोड़कर भोगवादी संस्कृति के पीछे-पीछे भड़कने में खतरा है। 'अंधेर नगरी' जैसा नाटक स्थल और काल के थपेड़ों को झेलकर अब भी

जीवित रहता है, नित नवीन अर्दन देता रहता है और साबित करता है कि भारतेंदु स्रष्टा ही नहीं द्रष्टा भी थे, सुदूर भविष्य में वे झाँक रहे थे| जननाट्यमंच के रंगकर्मियों ने अपने नुक्कड़ नाटक के प्रस्तुतीकरण के माध्यम से जनता को इस सत्य से अवगत कराने की भरसक कोशिश की है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया विश्व पूँजीवाद की अंतर्निहित प्रक्रिया है और बाज़ारवादी भूमण्ड़लीकरण के मौजूदा दौर में समाजवादी स्वप्न का ह्रास हो रहा है। 'दिशा' नाट्य संस्था के अभिनेता राजेश कुमार के निर्देशन में 'रंगा सियार' नामक नुक्कड़ नाटक में नायक घूम-घूमकर दर्शकों से पूछता है "किसने हमारे सपनों को चुराया? किसने हमारी रोज़ी रोटी चुरायी ? कहाँ है वह चोर ?"[3] नाटक देखने के लिए चारों ओर खड़े गाँववालों पर नायक के प्रश्न का इतना असर पड़ा कि वे भाग खड़े हुए और चीखने लगे 'हमने नहीं चुराया।' 'छः पैसा का रुपया'नामक नुक्कड़ नाटक में जननाट्यमंच ने इस सच्चाई की पोल खोल दी है कि नव साम्राज्यवाद द्वारा बिछाये गए जाल में तीसरी दुनिया में भारत जैसे कई देश उलझ गए हैं और उपभोक्तवाद की चपेट में फँस गए हैं। 'रुपया'खुद एक पात्र बनकर नाटक में आता है। यह नाटक भारत जैसे अविकसित देश की अंधी शासन व्यवस्था के उन बहरे पहरेदारों की असलियत का परिचय देता है जो देश और जनता के हानी-लाभ की चिंता किए बिना देश के शत्रुओं को मित्र समझ बैठते हैं। नागबोड्न ने अपने नुक्कड़ नाटक 'कंपनी'में व्यक्त किया है कि भूमण्ड़लीकरण के ज़रिए इनसानी सभ्यता सौदागरी सभ्यता में तब्दील हो रही है। बाज़ारू उपभोगवादी संस्कृति में संवेदनाएँ कहीं गुम हो जाती हैं। मुनाफा मुख्य लक्ष्य बन जाता है। अमरीका जैसी साम्रज्यवादी ताकतें किस प्रकार भारत को अपने जाल में फँसा रही हैं, इसका असरदार अंकन 'सघर्ष करेंगे जीतेंगे'में हुआ है। पब्लिक सेक्टर को बेचने, बिजली, पानी तथा रेलवे को भी गिरवी रखने के लिए तैय्यार राजनीतिज्ञों की भद्दी सूरत नाटक में दिखाई पड़ती है। मुक्तिबोध की यह उक्ति कि 'भारत के प्रत्येक स्थान पर एक अमरीका रहता है', बिल्कुल सच निकली है। 'अपहरण भाईचारा' सांप्रदायिकता के विपक्ष में बोलनेवाला नाटक है। सांप्रदायिकता नामक खतरनाक जानवर की खोज से भारत में आनेवाला रिंगमास्टर अमरीकी साम्राज्यवाद का प्रतिनिधित्व करता है। तीन गुंड़े हिंदु, इसलाम और सिख धर्म के नेताओं के प्रतिनिधि हैं। सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने के लिए अमरीकी रिंगमास्टर इन तीनों को डोलर देता है। विभिन्न धर्मवाले एक दूसरे का कत्ल करना शुरु करते हैं। बरसों पहले ब्रिटीश हुकूमत ने 'फूट ड़ालो राज करो' की कूटनीति अपनाई थी। अब भी साम्राज्यवादी ताकत जनता की कमज़ोर नब्ज़ को पकड़ती है, सांप्रदायिक दंगों के बीज बोती है, जिससे जनसाधारण की सामूहिक शक्ति विश्रृंखलित हो जाती है। नतीजतन, जनता शोषकों के खिलाफ एकजुट नहीं होती और मुनाफा शोषकों को मिलता है। नुक्कड़ रंगकर्मियों को मलाल है कि चारों ओर के परिवेश में केसरिया, हरा और लाल रंग के त्रिशूल का युद्ध ज़ारी है, योजनाबद्ध आतंकवादी कार्यवाही हो रही है, धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्तों का जनाजा उठाया जा रहा है और इन सारे हादसों के मूल में एक सोची-समझी साजिश है। जननाट्यमंच द्वारा मंचित 'दिल माँगे मोर गुरुजी' हिंदुत्ववादी ब्रिगेड़ पर एक कठोर प्रहार है।

असगर वजाहत का नाटक 'जिस लहौर नई देखा ओ जन्म्याई नई'का मंचन खुले आकाश के नीचे, 'इप्टा गाज़ियाबाद' ने प्रस्तुत किया था। यह नाटक देश के भिन्न-भिन्न कोने में खेला गया है।

नाटक की सफल प्रस्तुतियों ने यह साबित किया है कि सांप्रदायिकता की दीवानगी एक बहशीपन के विपक्ष में तथा अमनदोस्ती के पक्ष में है। जनसंवेदना को झकझोरने की ताकत लेखक की कलम में है, उसकी नज़्मों में है, उसके लफ्ज़ों में है। 'किशोरी लाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय' की 'प्लेयर्स' (players) नामक ड्रामाटिक सोसाइटी ने अपने नुक्कड़ नाटक 'खड़े हैं लाठी ताने' में हिंदुत्ववादी चढ़न को ललकारा है। 'नहीं कबूल', 'बोलो क्या बनोगे तुम','काशीनामा', जैसे नुक्कड़ नाटक भी भूमण्ड़लीकरण के हानिकारक तत्वों को चुनौती देनेवाले नाटक हैं।

सत्ता की बर्बर और अमानवीय शासन नीतियों की पोल खोलनेवाले नुक्कड़ रंगकर्मियों को राख कर देने के लिए सत्ता ने अपनी तीसरी आँख खोली है। दिल्ली में ही नहीं देश के विभिन्न कोनों में नुक्कड़ रंगकर्मियों पर छड़ियों, चाकुओं और पत्थरों से हमला हुआ है। कर्नाटक की नाट्यसंस्था 'समुदाय'और इलहबाद की नाट्यसंस्था 'दस्ता'पर हुए हमले, पंजाब के प्रसिध्द रंगकर्मी गुरुशरण सिंह की गिरफ्तारी और उनका पासपोर्ट रद्द करना, भगत सिंह पर लिखे गए नाटक 'इंकलाब ज़िंदाबाद'के नुक्कड़ प्रदर्शन पर लखनउ प्रशासन के सिपहसालरों द्वारा नाट्यकर्मी के सीने पर बंदूक रखा जाना, कालिकट (केरल) में नाट्यगीतिका द्वारा प्रस्तुत 'स्पार्टकस'नुक्कड़ नाटक पर मंच पर ही हथियार बंद पुलीस का हमला होना, केरल के आदिवासियों के मुक्तिदाता के.जे.बेबी के नुक्कड़ नाटक 'नाटुगद्दिका' पर गुंड़े द्वारा हमला होना, नाट्यकर्मियों की गिरफ्तारी आदि घटनाएँ सत्ता की मनमानी एवं निरंकुशता का बयान दे रही हैं 'हल्लाबोल'नाटक के प्रस्तुतीकरण के समय दिन दहाड़े सत्ता के बिचौलियों ने सफदर हाश्मी की जान ली तो सत्य इस भ्रम में था कि सफदर की हत्या के साथ जनवादी बहाव रुक जाएगा, लेकिन हाश्मी के दमदार और दिलदार दोस्तों ने, उनकी निड़र पत्नी और बहन ने व्यवस्था की तह में पैठे हत्याकारों को ललकारा– "गोलियों की गूँज से आवाज़ दब न पाएगी । सफदर जैसे कलाकर की शहादत बेकार न जाएगी।"4

संदर्भ:-

1. पाँच नुक्कड़ नाटक, सं. ब्रजराज किशोर, अनामिका प्रकाशन, 1991, पृ. 67
2. नटरंग, सं. अशोक वाजपेयी, नटरंग प्रतिष्ठान, अंक- 85, जून, 2010, पृ. 25
3. दस नुक्कड़ नाटक, सं. विमलकुमार, तक्षशिला प्रकाशन, 1998, पृ. 45
4. नुक्कड़ जनम संवाद, सं-स्नेहला हश्मी, मूल्य श्री हश्मी; जूलाई-1997, पृ.115

◆ सहायक आचार्य ,
हिन्दी विभाग,
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वद्यालय ,
केरल-86022
ईमेल –aneeshkn1@gmail.com

मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा अबी प्रकाशन एन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रित तथा डॉ.पी.लता द्वारा संपादित
Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14, Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha